जिनभाषित

वीर निर्वाण सं. 2532

भगवान् पार्श्वनाथ

श्री पार्श्वनाथ दिगम्बर जैन अतिशय क्षेत्र
मोराझड़ी (अजमेर) राजस्थान

भाद्रपद, वि.सं. 2063

सितम्बर, 2006

मूल्य 10/-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

साधु समाधि सुधा साधन

आचार्य श्री विद्यासागर जी

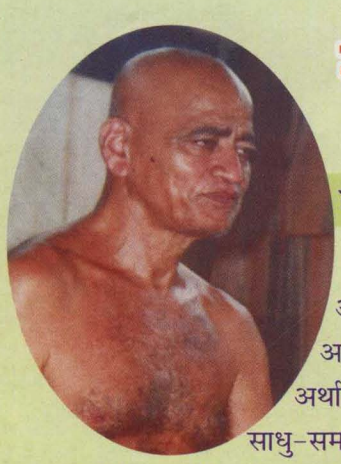

हर्ष विवाद से परे आत्म-सत्ता की सतत अनुभूति ही सच्ची समाधि है।

यहाँ समाधि का अर्थ मरण से है। साधु का अर्थ है श्रेष्ठ/अच्छा। अर्थात् श्रेष्ठ/आदर्श मृत्यु को साधु-समाधि कहते हैं। 'साधु' का दूसरा अर्थ 'सज्जन' है। अतः सज्जन के मरण को ही साधु-समाधि कहेंगे। ऐसे आदर्श मरण को यदि हम एक बार भी प्राप्त कर लें, तो हमारा उद्धार हो सकता है।

जन्म और मरण किसका? हम बच्चे के जन्म के साथ मिष्टान्न वितरण करते हैं। बच्चे के जन्म के समय सभी हंसते हैं किन्तु बच्चा रोता है । इसलिये रोता है कि उसके जीवन के इतने क्षण समाप्त हो गये। जीवन के साथ ही मरण का भय शुरू हो जाता है। वस्तुतः जीवन और मरण कोई चीज नहीं है। यह तो पुद्गल का स्वभाव है, वह तो बिखरेगा ही।

आपके घरों में पंखा चलता है। पंखे में तीन पंखुड़िया होती हैं। ये सब पंखे के तीन पहलू हैं और जब पंखा चलता है तो एक मालूम पड़ते हैं। ये पंखुड़ियाँ उत्पाद, व्यय, ध्रौव्य की प्रतीक हैं और पंखे के बीच का डंडा जो घूमता है सत् का प्रतीक है। हम उसकी शाश्वतता को नहीं देखते, केवल जन्म-मरण के पहलुओं से चिपके रहते हैं, जो भटकने/घुमाने वाला है।

समाधि ध्रुव है, वहाँ न आधि है, न व्याधि है और न ही कोई उपाधि है। मानसिक विकार का नाम आधि है, शारीरिक विकार व्याधि है। बुद्धि के विकार को उपाधि कहते हैं। समाधि मन, शरीर और बुद्धि से परे हैं। समाधि में न राग है, न द्वेष है, न हर्ष है और न विषाद। जन्म और मृत्यु शरीर के हैं। हम विकल्पों में फँस कर जन्म-मृत्यु का दुःख उठाते हैं। अपने अन्दर प्रवाहित होने वाली अक्षुण्ण चैतन्य धारा का हमें कोई ध्यान ही नहीं। अपनी त्रैकालिक सत्ता को पहिचान पाना सरल नहीं है। समाधि वही है, जिसमें मौत को मौत के रूप में नही देखा जाता है, जन्म को भी अपनी आत्मा का जन्म नहीं माना जाता। जहाँ न सुख का विकल्प है और न दुःख का।

आज ही एक सज्जन ने मुझ से कहा "महाराज, कृष्णजयन्ती है आज।" मैं थोड़ी देर सोचता रहा। मैंने पूछा "क्या कृष्ण जयन्ती मनानेवाले कृष्ण की बात आप मानते हैं? कृष्ण गीता में स्वयं कह रहे हैं कि मेरी जन्म-जयन्ती न मनाओ। मेरा जन्म नहीं, मेरा मरण नहीं। मैं तो केवल सकल ज्ञेय ज्ञायक हूँ। त्रैकालिक हूँ। मेरी सत्ता तो अक्षुण्ण है।" अर्जुन युद्ध-भूमि में खड़े थे। उनका हाथ अपने गुरुओं से युद्ध के लिये नहीं उठ रहा था। मन में विकल्प था कि "कैसे मारूँ अपने ही गुरुओं को।" वे सोचते थे चाहे मैं भले ही मर जाऊँ, किन्तु मेरे हाथ से गुरुओं की सुरक्षा होनी चाहिये। मोहग्रस्त ऐसे अर्जुन को समझाते हुये श्री कृष्ण ने कहा-

जातस्य हि ध्रुवो मृत्युर्ध्रुवो जन्म मृतस्य च।
तस्मादपरिहार्येऽर्थे न त्वं शोचितुमर्हसि॥

जिसका जन्म है, उसकी मृत्यु अवश्यम्भावी है और जिसकी मृत्यु है, उसका जन्म भी अवश्य होगा। यह अपरिहार्य चक्र है। इसलिये हे अर्जुन! सोच नहीं करना चाहिये।

अर्जुन! उठाओ अपना धनुष और क्षत्रिय धर्म का पालन करो। सोचो, कोई किसी को वास्तव में मार नहीं सकता। कोई किसी को जन्म नहीं दे सकता। इसलिये अपने धर्म का पालन श्रेयकर है। जन्म-मरण तो होते ही रहते हैं। आवीचिमरण तो प्रतिसमय हो ही रहा है। कृष्ण कह रहे हैं अर्जुन से और हम हैं केवल जनम-मरण के चक्कर में, क्योंकि चक्कर में भी हमें शक्कर-सा अच्छा लग रहा है।

तन उपजत अपनी उपज जान
तन नशत आपको नाश मान
रागादि प्रकट जे दुःख दैन
तिन ही को सेवत गिनत चैन

हम शरीर की उत्पत्ति के साथ अपनी उत्पत्ति और शरीर-मरण के साथ अपना मरण मान रहे हैं। अपनी वास्तविक सत्ता का हमको भान ही नहीं। सत् की ओर हम देख ही नहीं रहे हैं। हम जीवन और मरण के विकल्पों में फँसे हैं, किन्तु जन्म-मरण के बीच जो ध्रुव सत्य है उसका चिन्तन कोई नहीं करता। साधु-समाधि तो तभी होगी, जब हमें अपनी शाश्वत सत्ता का अवलोकन होगा। अतः जन्म-जयन्ती न मनाकर हमें अपनी शाश्वत सत्ता का ही ध्यान करना चाहिये, उसी की सँभाल करनी चाहिये।

'समग्र' (चतुर्थ खण्ड) से साभार

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

रजि. नं. UPHIN/2006/16750

सितम्बर 2006 | मासिक **जिनभाषित** | वर्ष 5, अङ्क 9

सम्पादक
प्रो. रतनचन्द्र जैन

कार्यालय
ए/2, मानसरोवर, शाहपुरा
भोपाल- 462 039 (म.प्र.)
फोन नं. 0755-2424666

सहयोगी सम्पादक
पं. मूलचन्द्र लुहाड़िया,
(मदनगंज किशनगढ़)
पं. रतनलाल बैनाड़ा, आगरा
डॉ. शीतलचन्द्र जैन, जयपुर
डॉ. श्रेयांस कुमार जैन, बड़ौत
प्रो. वृषभ प्रसाद जैन, लखनऊ
डॉ. सुरेन्द्र जैन 'भारती', बुरहानपुर

शिरोमणि संरक्षक
श्री रतनलाल कंवरलाल पाटनी
(आर.के. मार्बल)
किशनगढ़ (राज.)

श्री गणेश कुमार राणा, जयपुर

प्रकाशक
सर्वोदय जैन विद्यापीठ
1/205, प्रोफेसर्स कॉलोनी,
आगरा-282002 (उ.प्र.)
फोन : 0562-2851428, 2852278

सदस्यता शुल्क

शिरोमणि संरक्षक	5,00,000 रु.
परम संरक्षक	51,000 रु.
संरक्षक	5,000 रु.
आजीवन	500 रु.
वार्षिक	100 रु.
एक प्रति	10 रु.

सदस्यता शुल्क प्रकाशक को भेजें।

अन्तस्तत्त्व

पृष्ठ

- **प्रवचन** : साधु समाधि सुधा साधन — आ.पृ.2
  : आचार्य श्री विद्यासागर जी
- **स्तवन** : मुनि श्री योगसागर जी — आ.पृ.4
  - श्री सुपार्श्वनाथ-स्तवन
  - श्री चन्द्रप्रभ-स्तवन
- **कथाएँ** : मुनि श्री समतासागर जी — आ.पृ.3
  - भगवान् विमलनाथ
  - भगवान् अनन्तनाथ
- **सम्पादकीय** : पुरातत्त्वकानून और अल्पसंख्यक जैन — 2
- **प्रवचन** : लोभ की तासीर : मुनिश्री क्षमासागर जी — 4
- **लेख**
  - अध्यात्म और सिद्धांत : पं. कैलाश चन्द्र जी शास्त्री — 7
  - मोक्षमार्ग की द्विविधता : मूलचन्द लुहाड़िया — 13
  - कल्याण मन्दिर स्तोत्र : एक परिशीलन — 15
    : प्राचार्य पं. निहालचन्द्र जैन
  - चातुर्मास में धार्मिक शिक्षण-प्रशिक्षण — 18
    : डॉ. ज्योति जैन
  - विधान-अनुष्ठान हो तो, ऐसा जैसा अहमदाबाद में हुआ — 20
    : के.सी. जैन एडवाकेट
  - दिगम्बर जैन मुनि के सम्बन्ध में मार्कोपोलो के विचार — 22
    : सुरेश जैन आई.ए.एस.
  - क्षमा मनुष्य का सर्वोत्तम गुण : सुशीला पाटनी — 24
  - दि. जैन अतिशयक्षेत्र मोराझड़ी (अजमेर) राजस्थान — 25
- **जिज्ञासा-समाधान** : पं. रतनलाल बैनाड़ा — 26
- **चिकित्सा** : मलेरिया बुखार : डॉ. रेखा जैन, एम.डी. — 29
- **गज़ल** : नोरतमल काशलीवाल — 28
- **समाचार** — 19, 21, 32

लेखक के विचारों से सम्पादक का सहमत होना आवश्यक नहीं है।
जिनभाषित से सम्बन्धित समस्त विवादों के लिए न्याय क्षेत्र भोपाल ही मान्य होगा।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सम्पादकीय

पुरातत्त्व कानून और अल्पसंख्यक जैन

भारतीय संविधान में धर्मनिरपेक्षता का सिद्धान्त मानते हुए कहा गया है कि अल्पसंख्यकों को अपने धर्म का पालन करने तथा आराध्य की पूजा अर्चना करने, अपनी परम्परा-दर्शन को जीवन में परिणत करने, उनकी पूज्यता अक्षुण्ण बनाये रखने में शासन साथ देगा, सहयोग करेगा। उनकी न्यायप्रियता पर विश्वास कर वे स्वतंत्रता से, निर्बाध, बगैर धर्मान्धता के अपने धर्म, धर्मायतनों, मंदिरों, तीर्थक्षेत्रों का संरक्षण, संवर्धन एवं पूज्यता सुरक्षित रख सकेंगे। उनका सरकारीकरण न होगा। किन्तु स्थिति विपरीत है। जैन समाज के अनेकानेक प्रकरण आज भी विचाराधीन हैं, जिनमें शासन मौन है। बहुसंख्यक समाज ने हमारे धर्मायतनों पर अतिक्रमण किये, कब्जा किया तथा हमारी अपनी धार्मिक मान्यता पूजापरम्परा में न केवल बाधा डाली, अपितु आराधना में भी विघ्न उपस्थित किए, आक्रमण किये। हमने इतिहास में बहुत भोगा और रोया है। अब हमें सजग होकर, सामाजिक एकता से सम्पन्न होकर कुछ कर सकने की क्षमता से ऐसी कानून-व्यवस्था बनाने के लिए प्रयत्न करना होगा, ताकि भविष्य में आगामी पीढ़ियाँ अपनी धार्मिक आस्था-पद्धति-परंपरा का निर्बाध पालन कर सकें।

आज भारतीय शासन अपने को धर्मनिरपेक्ष राज्य कहता है, जिसका अर्थ सर्वधर्म-समभाव है। अल्पसंख्यक होने के कारण यदि हमें धर्मक्षेत्र में पूर्ण सुरक्षा का कवच मिला है, तो हमें अपने धर्मपालन की पूर्ण स्वतंत्रता हो, हम अपनी संस्कृति की रक्षा कर सकें, अपने धर्मायतनों-मंदिरों-मूर्तियों का स्वयं संरक्षण कर अपनी पूजापद्धति, परंपरा का निर्बाध पालन कर सकें, हमें हमारा संवैधानिक अधिकार (जो भारतीय अनुच्छेद 25 से 30 में दिये हैं) मिले।

हमें कानून प्रदत्त संरक्षणों द्वारा अपनी धार्मिक संस्थाओं, मंदिरों एवं तीर्थस्थलों पर कानूनी प्रक्रिया द्वारा अधिकार प्राप्त करना एवं नियंत्रण करना तथा उनके सुरक्षित रख-रखाव हेतु प्रयासरत रहना है। म.प्र. में जैन अल्पसंख्यक हैं, उन्हें संविधान से प्राप्त अधिकारों में कहा गया है कि -

1. जैनधर्मावलंबी अपनी प्राचीन संस्कृति, पुरातत्त्व एवं धर्मायतनों का संरक्षण कर सकेंगे।

2. जैन मंदिरों, तीर्थस्थलों इत्यादि के प्रबंध की जिम्मेदारी जैन समुदाय के हाथ में होगी।

3. कानून द्वारा प्रदत्त संरक्षणों द्वारा अपनी धार्मिक संस्थाओं, ट्रस्टों, तीर्थस्थलों पर कानूनी प्रक्रिया द्वारा अधिकार प्राप्त करना, नियंत्रण करना तथा उसके सुरक्षित रखरखाव हेतु प्रयासरत रहना।

4. जैन धर्मावलंबियों के धार्मिक स्थल, संस्थाओं, मंदिरों, तीर्थक्षेत्रों एवं ट्रस्टों का सरकारीकरण या अधिग्रहण आदि नहीं किया जा सकेगा, अपितु धार्मिक स्थलों का समुचित विकास एवं सुरक्षा के व्यापक प्रबंध शासन द्वारा भी किए जायेंगे।

5. जैन धर्मावलंबी को बहुसंख्यक समुदाय के द्वारा प्रताड़ित किए जाने की स्थिति में सरकार जैन धर्मावलंबियों की रक्षा करेगी।

भारत वर्ष में पुरातत्व विभाग के गठन के 50 वर्षों बाद 1904 में पहला पुरातत्त्वसंबंधी कानून बना, जिसे स्वतंत्रता के बाद भी स्वीकार किया गया, जिसमें बाद में कुछ संशोधन आदि भी हुए। आज ये कानून अल्पसंख्यकों को संविधान के अंतर्गत दिये गये कानूनी अधिकारों का हनन कर रहे हैं। ऐसा लगता है मानो हमारी संस्कृति, धर्मायतनों, मंदिरों एवं तीर्थ स्थानों का सरकारीकरण हो गया है। धर्मनिरपेक्ष राज्य में ये सब कानून संविधान से प्राप्त मौलिक अधिकारों के विरूद्ध जा रहे हैं - अल्पसंख्यक जैन समाज के लिए। अपनी पुरातन संस्कृति, मंदिरों एवं तीर्थों की चिन्ता, प्रबंध, रखरखाव, पूजा हम प्राचीनकाल से करते आ रहे हैं, कर रहे हैं और करते रहेंगे। आज हमें अल्पसंख्यक होने से शासन द्वारा जो विभिन्न प्रकार के संरक्षण दिये हैं, उसमें पुरातत्त्व कानून विरोधभासी है, सहयोगी नहीं विरोधी है। इनका सरकारी नियंत्रण धर्म निरपेक्षता के सिद्धान्त पर कुठाराघात है। या तो धार्मिक स्वतंत्रता हो या धर्म पर सरकारी नियंत्रण। यह कैसी दोमुखी नीति है शासन की, यह समझना होगा। वर्तमान पुरातत्त्व में संरक्षण कानून की

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

गिरफ्त में जैन अल्पसंख्यकों के मंदिर, आराधना स्थल, मूर्ति आदि नहीं आना चाहिये है। यह उल्लेखनीय है कि Monument की परिभाषा में मंदिरों को क्यों रखा जाये ? प्राणप्रतिष्ठित जैन मूर्ति Antiquite है। ये अजीब नहीं, अनजानी नहीं, जीवंत हैं, अनादि काल से जानी-पहचानी हैं।

हम जैन श्रमण संस्कृति (वैदिक संस्कृति से पृथक्) के आधार पर अपनी परंपरा अनुसार अपने देव, मंदिरों (भक्त को भगवान् बनानेवाली प्रयोगशाला) को सुरक्षित रख निर्बाध पूजा आराधना कर सकें, धर्मपालन कर सकें। अल्पसंख्यक जैन समुदाय को अपने संवैधानिक अधिकार के लिए **"दि नेशनल कमीशन फॉर माइनरटीज एक्ट** 1992" के तहत अपनी माँग/आवाज उपर्युक्त विषय पर पुरजोर उठानी चाहिये, ताकि आज और आनेवाले कल में हम अपने मंदिर-मूर्तियों, सांस्कृतिक परंपराओं/मान्यताओं का संरक्षण, संवर्धन कर सकें, आराध्यों की आराधना कर भक्त से भगवान् बनने की प्रक्रिया को अमल में ला सकें।

श्रमणसंस्कृति का आधार निवृत्तिमार्ग, अहिंसा, अपरिग्रह, ध्यान, तपस्या, संयम, व्रतादि पालना है। हमारी मान्यतानुसार हर आत्मा में परमात्मा बनने की शक्ति है। हम ईश्वरवादी नहीं हैं, ईश्वर को विश्व का कर्त्ता-धर्ता नहीं मानते। वैदिक संस्कृति से भिन्न हमारा दर्शन, अध्यात्म है। हिन्दू धर्म का आधार वेद हैं, किन्तु हम वेदों की अलौकिकता को स्वीकार नहीं करते, फिर भी सम्मान करते हैं। जैन धर्मावलम्बियों के रीतिरिवाज, परंपरायें, मान्यताएँ, अध्यात्म बहुसंख्यक हिन्दू धर्मावलंबियों से भिन्न हैं। हम भारतीय नागरिक हैं। हमारा धर्म प्राचीनतम है, अतः अन्य धर्मों की कुछ परम्पराओं से समानता भी है, यह जैनधर्म की निरपेक्षता का प्रमाण भी है। हम किसी धर्म को हानि न पहुँचाते हैं और न पहुँचाना चाहते हैं।

जैन मंदिर, धर्मायतन, मूर्तियाँ इन पुरातत्त्व कानूनों की परिधि में नहीं आतीं और यदि Monument की परिभाषा में जैन मंदिर आते हैं और कानून हमारी मूर्तियों को Antiquite मानता भी है, तो उन्हें कानून के दायरे से पृथक् करना चाहिये, कारण Monument अतीत की वस्तु है तथा Antiquite अजीबोगरीब वस्तु है, पर जिनमंदिर में विराजमान मूर्तियाँ जीवंत है तथा मंदिर अतीत ही नहीं वर्तमान और भविष्य में भी रहने वाले आराधना केन्द्र हैं। अतः वे Monument की श्रेणी में नहीं आना चाहिए। हिन्दू लॉ से जैन लॉ भिन्न है। भले ही हम पर हिन्दू लॉ लागू हो, पर सरकारी कानूनों द्वारा जैन लॉ का सम्मान होना चाहिए। हमें अपने धार्मिक तीर्थों, पुरातन धरोहर, मंदिरों, मूर्तियों, धर्मायतनों की सुरक्षा, रखरखाव, जीर्णोद्धार, नवीनीकरण आदि की पूरी-पूरी छूट हो, ताकि हम इस धर्म निरपेक्ष राज्य में अपनी मान्यताओं-परंपराओं, रीति-रिवाजों और आस्था के अनुसार अपनी प्राचीनतम संस्कृति की रक्षा, संरक्षण करते हुए पूर्ववत् स्वामित्व बनाये रख सकें।

डॉ. सुरेन्द्रकुमार जैन
मंत्री-अखिल भारतवर्षीय दिगम्बर जैन विद्वत्परिषद्
मंत्री कार्यालय-एल-65, न्यू इंदिरानगर, बुरहानपुर (म.प्र.)
फोन - 07325 - 257662 **मों.** 9826565737

- **ज्ञानी विचार करता है कि इन्द्रियों के द्वारा दृष्टिगोचर होनेवाला यह शरीर अचेतन है, चेतन आत्मा इन्द्रियों के गोचर नहीं है। इसलिए मैं किस पर रागद्वेष करूँ? अतः मैं रागद्वेष छोड़कर माध्यस्थ्यभाव को धारण करता हूँ।**
- **सांसारिक लोगों से संसर्ग करने से प्रथम तो अनेक प्रकार का वार्तालाप करने और सुनने से मानसिक आकुलता होती है, दूसरे चित-विभ्रम होता है। इसलिए अध्यात्म में तत्पर रहनेवाले योगियों को लौकिक जनों की संगति छोड़ देनी चाहिए।**

'वीरदेशना' से साभार

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

लोभ की तासीर

मुनि श्री क्षमासागर जी

लोभ की तासीर ही यह है कि आशाएँ बढ़ती हैं, आश्वासन मिलते हैं और हाथ कुछ नहीं आता। एक उदाहरण है- एक व्यक्ति को किसी देवता ने प्रसन्न होकर एक शंख दे दिया। उस शंख की तासीर थी कि नहा-धोकर शंख को फूँको, फिर उसके सामने जितनी इच्छा करो उतना मिल जाता था। उसको तो बड़ा मज़ा हो गया। बस, नहा-धोकर शंख फूँका और आकांक्षा की कि हजार रुपये, तो हजार रुपये मिल गये। एक दिन बाजूवाले ने देख लिया। बस, गड़बड़ यहीं से शुरू होती है कि बाजूवाला अपन को देखे या अपन बाजूवाले को देखें। बाजूवाले ने सोचा कि यह शंख तो अपने पास होना चाहिये। जो-जो अपने पास है वह नहीं दिखता, तो दूसरे के पास है हमें वह दिखता है। जो अपने पास है वह दूसरे को दिखता है। सीधा-सा गणित है- जो अपने पास है वह दिखने लगे तो सारा लोभ नियन्त्रित हो जाय। नहीं, सारे संसार में जो चीजें हैं वे सब आसानी से दिखाई पड़ती है, पर मैंने क्या हासिल किया- मुझे ये दिखाई नहीं पड़ता। और एक असन्तोष मन के अन्दर निरन्तर बढ़ता ही चला जाता है। व्यक्तिगत असन्तोष, पारिवारिक असन्तोष, सामाजिक असन्तोष- कितने तरह से असन्तोष हमारे जीवन को इतनी-सी बात से घेर लेते हैं कि मेरे पास जो है उसे नहीं देखता हूँ, दूसरे के पास जो है वह दिखाई देता है मुझे। क्या करें? दूसरे के पास क्या है- इससे आँखें मींच लें क्या? नहीं भैया! दूसरों के पास जो है वह उसमें खुश है- ऐसा मानकर के जो अपने पास है उसमें आनन्द लें बस! इतना तो कर सकते हैं? नहीं कर सकते? आहार की प्रक्रिया में मैं रोज देखता हूँ कि किसी को एक ग्रास देने को मिल जाता है, तो पहले तो उसको आनन्द आता है, लेकिन जैसे ही देखता है कि दूसरे को दो ग्रास देने को मिल गये, बस-सारा आनन्द खत्म! जबकि उसे भी एक ग्रास देने का मौका मिला है, पर उसका आनन्द नहीं है उसको, तब तक तो था जब तक दूसरे को दो ग्रास का मौका नहीं मिला था। बड़ा आश्चर्य होता है, अपन ने कैसी आदत बना ली अपनी! इसको थोड़ा नियन्त्रित करें। अपन आनन्द लें उस चीज में जो अपने को प्राप्त है। हाँ तो, बाजूवाले ने देखा कि इसके पास बढ़िया शंख है तो उसने भी एक बाबाजी से शंख ले लिया। पर उस शंख से मिलता कुछ नहीं था, उसके सामने जितना माँगो वह उससे दुगना देने को बोलता था। उसने पड़ौसी से कहा- 'सुनो! मुझे भी एक बाबाजी ने शंख दिया है।'

'कैसा शंख?' पड़ौसी ने पूछा।

'उससे जितना माँगो, उसका दुगुना मिलता है।'

'दुगुना! मेरे पास तो जो है, उससे जितना माँगो उतना ही मिलता है।'

'ऐसा करें, बदल लें आपस में?'

'हाँ-हाँ, ऐसा ही करें।' पड़ौसी ने कहा।

बस, हो गया काम! बदल दिया और दुगुनेवाला ले लिया।

मन में खुश! सबेरे उठे, जल्दी-जल्दी नहाया-धोया, और फिर शंख फूँका। कहा- 'एक लाख रुपये दो।'

शंख में से आवाज आई- 'एक लाख क्यों? दो लो न, दो।'

लेकिन आया एक भी नहीं।

अरे! पुरानेवाले में तो जितना माँगो उतना ही मिल जाता था, पर इसमें से केवल आवाज आई कि एक क्यों, दो लो न, दो, पर आया कुछ नहीं। तो उसने कहा- 'तुम देते क्यों नहीं? दो लाख दो।'

शंख में से फिर आवाज आई- 'दो क्यों! चार लो न चार।'

अब समझा में आ गई, जितना माँगते चले जाते हैं आश्वासन मिलता है उससे दुगुने का, पर हाथ में कुछ भी नहीं आता।

संसार में हमारी जितनी पाने की आकांक्षा है, वह हमें सिर्फ आश्वासन देती है, मिलता-विलता कुछ नहीं है। जो हमने पाया है, अगर उसमें हम सन्तोष रख लेवें, तो संसार में फिर ऐसा कुछ नहीं है जो पाने को शेष रह जाए। पाते काहे के लिए हैं? आत्म-संतोष के लिए। पर आत्म-संतोष नहीं मिला और दुनियाभर की सारी चीजें मिल गईं।

आज हमने बहुत सारे बच्चों से बात की, बहुत रिच फैमिली (धनी परिवार) के, अच्छे हाल। मेरे पास एक ही प्रश्न पूछते हैं कि कैसे सैल्फ सेटिसफैक्शन गेन (आत्म-संतोष प्राप्त) करें? कैसे मिले आत्मसंतोष? हमारी फैमिली (परिवार) बहुत रिच है, हमारा एजूकेशन (शिक्षा) भी बहुत हाई (ऊँची) है, इसके बावजूद ये सारी उपलब्धियाँ व्यर्थ हैं अगर आत्म-सन्तोष नहीं है।

पहली चीज है कि जो हमारे पास है उसे देखें। वर्तमान में ये भी प्रचलित हो गया है कि यदि हम सन्तोष धारण कर लेंगे, तो हमारी प्रगति रुक जायेगी। लेकिन ऐसा

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

नहीं है। अगर हमें जो प्राप्त है हम उसमें सन्तुष्ट होंगे और जो हमें प्राप्त नहीं है उसके लिए सत्प्रयास करेंगे तो हमारी प्रगति नहीं रुकेगी।

टॉलस्टॉय ने एक कहानी लिखी है, बहुत प्रसिद्ध है- 'हाउ मच लैण्ड डज ए मैन रिक्वायर'? बहुत प्रसिद्ध कथा है, हिन्दी में भी ट्रान्सलेशन (अनुवाद) किया है उसका, आपने भी पढ़ी होगी-

एक व्यक्ति को किसी ने वरदान दिया कि तुम एक दिन सुबह सूरज उगने से लेकर अस्त होने तक जितनी दूरी तय कर वापस लौटोगे, उतनी जगह/ज़मीन तुम्हारी हो जायेगी- जाओ तुम्हें वरदान देता हूँ। तो उसने सूरज की पहली किरण के साथ दोड़ना शुरू किया और बेतहाशा दौड़ता रहा। जहाँ से प्रारम्भ किया था वहीं पर लौटना था शाम ढलने से पहले। जहाँ लाइन खींची थी (जहाँ से प्रारम्भ किया था) उससे मुश्किल से दो-चार कदम पहले वह इतना थक गया कि निढाल होकर गिर पड़ा। गिरा तो फिर उठ नहीं सका। वहीं प्राणान्त हो गया उसका। उसकी क़ब्र पर लिखा गया कि- 'हाउ मच लैण्ड डज ए मैन रिक्वायर' (एक व्यक्ति को कितनी ज़मीन अपेक्षित है?)

कितना चाहिये उसको और कितना है? आखिरी समय इतनी ही (दो गज) ज़मीन तो चाहिये, जब कि वह इस बात के लिए इतना भागता रहा कि उसे सब कुछ मिल जाय लेकिन चाहिये कितना सा! हमें ये ध्यान में आ जाये कि चाहिये कितना-सा और हम जो प्राप्त करें उसमें आनन्द लें तो हमारे जीवन में निर्मलता आये बिना नहीं रहेगी।

जीवन में निर्मलता

निर्मलता क्या चीज है? निर्मलता के मायने है- जीवन का चमकीला होना। निर्मलता के मायने है- मन का भीगा होना। निर्मलता के मायने है- जीवन का शुद्ध होना। निर्मलता का मायने है- जीवन का सारगर्भित होना। निर्मलता के मायने है- जीवन का निखालिस होना। इतने सारे मायने हैं पवित्रता के, निर्मलता के। एक-एक को समझ लें, छोटे-छोटे उदाहरण से समझ लें तो बात समझ में आ जायेगी कि निर्मल किस तरह होगा! जब निर्मल होता है तो कितना आनन्द आता है। जब मुझे मलिनताएँ घेरने लगें तो मैं उन्हें नियन्त्रित करूँ- इतना ही करना है हमें। दिनभर में कितने ही मौके आयेंगे जब मुझे लोभ घेरेगा पर मुझे अपने जीवन को चमकीला बनाना है। जीवन कैसे बनता है चमकीला?

सन्त एकनाथ के बारे में मालूम होगा सबको। वे नदी से नहाकर लौट रहे थे, रास्ते में ऊपर से किसी ने उन पर थूक दिया। एकनाथ कुछ न बोले। चुपचाप दोबारा नहाने को चले गये। लौटे तो फिर उसने थूक दिया। एकनाथ चुपचाप फिर नहाकर आ गये। उस व्यक्ति ने फिर थूक दिया। ऐसा सौ दफ़े हुआ। अपने साथ एक-आध दफ़े भी हो जाये तो अपने मन के साथ क्या गुज़रती है? कितना जल्दी मलिन हो जाता हमाना मन, हो जाता कि नहीं! हो जाता है। विचार करना है अपने को। किसी ने जरा-सी कोई बात कह दी कि बस! कई बार तो ऐसे लगने लगता है कि अपन चाबी के खिलौने न हों कि जैसी जितनी चाबी भरी उतने ही चलने लगे। जैसे ही किसी ने कोई खराब बात कह दी, मन गन्दा हो गया; किसी ने जरा-सी अपने मन की बात कह दी, मन प्रसन्न हो गया, मानो हम दूसरों की भरी हुई चाबी के अनुसार अपना जीवन जीते हैं। क्या ऐसा है? विचार करना चाहिये। एकनाथ फिर भी बिल्कुल शान्त रहे, सौ दफ़े स्नान किया उन्होंने। जिसने थूका था अब उसे तक़लीफ होने लगी। वह एकनाथ से क्षमा माँगने लगा- 'बहुत गलती हो गई, मुझे क्षमा करें।'

'नहीं-नहीं! मैं तो तुम्हें धन्यवाद देनेवाला था। मैं तो एक ही बार नहाता, फिर इतनी निर्मलता नहीं आती। तुम्हारी वजह से मुझे सौ बार नहाने को मिला। और इतना ही नहीं, मैंने आज समझ लिया कि कोई कितना भी करे, मेरा मन कलुषित नहीं होगा, मलिन नहीं होगा, ऐसा चमकीला बना रहेगा।' एकनाथ ने कहा।

क्या हम अपने मन को इस तरह मलिनता से बचाकर चमकीला बनाये रख सकते हैं? दिनभर में ऐसे सैंकड़ों अवसर आते हैं, मानिए एक-आध किसी अवसर पर ही सही, सौ अवसरों पर नहीं, एक अवसर पर तो मन को मलिन नहीं होने दिया, चमकीला बनाये रखा-ऐसा हम कर सकते हैं?

मन भीगना

मन का भीग जाना क्या है? इससे भी हमारा मन निर्मल होता है। जितना भीग जाता है उतना निर्मल होता है हमारा मन। जैनेन्द्रकुमार के जीवन का एक उदाहरण है। जानते हैं जैनेन्द्रकुमार कौन थे? बहुत बड़े साहित्यकार थे। अब यंग जॅनरेशन (युवा पीढ़ी) तो उनको मुश्किल से ही जानती होगी! वे अपने नाम के साथ जैन नहीं लगाते थे, बंद कर दिया था उन्होंने जैन लिखना। फिर भी उन्होंने जीवनभर धर्म को जिया। जीवन के आखिरी समय जब वे पैरालाइज (लकवे से ग्रस्त) हो गये, बोलना भी उनको मुश्किल हो गया, तब जो भी उनके पास आता, उसे देखकर उनकी

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

आँखों से आँसू गिर जाते, इससे मालूम हो जाता था कि पहचान लिया, इतना ही नहीं अपनी भावनाएँ भी व्यक्त कर दी हैं। उनको बोलने में बहुत तकलीफ होती थी, गले में बहुत अधिक कफ़ संचित हो गया था- ऐसा बताते हैं। डॉक्टर ने कहा कि अब ठीक होने के कोई चांसेज (उम्मीद) नहीं हैं, बस अब अपने भगवान को याद करो। तब पहली बार उनको लगा कि जीवन में भगवान की कितनी जरूरत है! उन्होंने णमोकार मन्त्र पढा। अपने जीवन के अन्तिम संस्मरण में लिखा उन्होंने कि 'मैं णमोकार मन्त्र पढता जाता था और रोता जाता था। आधा घण्टे तक णमोकार मन्त्र पढ़ते-पढ़ते खूब जी भर के रो लिया। जब डॉक्टर दूसरी बार उनका चैक-अप (जाँच) करने आया तो उन्होंने पूछा- 'मिस्टर जैन! आपने अभी थोड़ी देर पहले कौनसी मेडिसिन (दवाई) खाई है?' नर्सेज से पूछा कि 'इनको कौनसी मेडिसिन (दवाई) दी गई है?'

नर्सेज ने कहा कि 'अभी कोई दवा नहीं दी गई। हाँ, आपने कहा था- अपने ईश्वर को याद करो, इन्होंने वही किया है अभी।'

उन्होंने अपने संस्मरण में लिखा कि 'मुझे बार-बार यही लगता था कि मैंने जीवनभर ऐसे निर्मल परिणाम के साथ भगवान् को याद क्यों नहीं किया। अब मृत्यु के निकट समय में अपने भगवान् को याद कर रहा हूँ तो मुझे अपने पूरे जीवन पर रोना आया और मन भीग गया।' ये है मन का भीगना, ये भी निर्मलता लाता है।

एक और घटना है जिससे मालूम पड़ेगा कि हमारा मन कैसे भीगता है? जितना भीगता है उतना निर्मल होता जाता है, जितना निर्मल होता है उतना भीगता जाता है। आज ऐसे अवसर कम आते हैं। अगर किसी की आँख भर जाये तो वह कमजोर माना जाता है। आज कोई रोने लगे तो बिल्कुल बुद्धु माना जाये। आज अगर मन भीग जाये तो हम बहुत आउट ऑफ डेट (बहुत पुराना, असामायिक) माने जायें। बहुत कठोर हो गये हैं हम, हमारी निर्मलता हमारे कठोर मन से गायब हो गई। जबकि हमारा मन इतना निर्मल होना चाहिए था कि दूसरों के दुःख को, संसार के दुःखों को देखकर द्रवित हो जाये, उसमें डूब जाये।

एक आदमी रोज एक निश्चित रास्ते से निकलता था। उस पर एक दूसरा आदमी रोज ऊपर से कचरा डाल देता। बड़ी मुश्किल, रोज का काम हो गया यह। फिर भी वह आदमी कचरा डालनेवाले को कुछ नहीं कहता, सोचता कि 'कचरा शरीर पर गिरा है, मन को क्यों गन्दा करें? शरीर ही तो गन्दा हुआ है, इससे क्या फर्क पड़ता है!' ऐसा सोचकर वह आगे बढ़ जाता। एक दिन वह उसी रास्ते से होकर निकला, पर ऊपर से कचरा नहीं आया। उस आदमी ने ऊपर देखा- 'क्या बात है! आज कचरा क्यों नहीं फेंका गया!' ऊपर कोई नहीं था। दूसरे दिन भी कचरा नहीं फेंका गया। उस आदमी ने आस-पासवालों से पूछताछ की- 'वह कचरा फेंकनेवाला व्यक्ति क्या कहीं बाहर गया है?' देखिये, यदि इस जगह हम और आप होते, तो शुरू में ही कचरा न फेंका जाय, इसका इन्तजाम कर देते। लेकिन उस आदमी की निर्मला देखियेगा कि कचरा गिरने पर भी उस व्यक्ति के प्रति मन मलिन नहीं किया, परिणाम नहीं बिगाड़े, बल्कि पूछ रहे हैं कि 'कहीं बाहर गये हैं क्या?' उनके दरवाजे को धक्का दिया, अटका हुआ था- खुल गया। वह सीढ़ी चढ़कर ऊपर पहुँचा। देखा- जो व्यक्ति रोज कचरा फेंकता था, वह बीमार पड़ा है, बिस्तर पर है। वह वहीं बैठ गया और उस बीमार व्यक्ति के स्वास्थ्य-लाभ के लिए प्रार्थना करने लगा। वह बीमार व्यक्ति चुपचाप देखता रहा कि यह वही व्यक्ति है जिस पर मैं रोज कचरा फेंकता था और यही व्यक्ति मेरे स्वास्थ्य-लाभ के लिए प्रार्थना कर रहा है! उस बीमार व्यक्ति (कचरा फेंकनेवाले) का मन भीग गया। कल तक जिस पर कचरा फेंकता था, आज उसी के चरणों में आँसू बहाये। ये क्या चीज है? ये मन की निर्मलता है, जो दूसरे के मन को भी भिगो देती है। स्वयं का मन तो भीगता ही है, दूसरे का मन भी हमारे मन की निर्मलता से प्रभावित होता है। इसी को कहते हैं मन शुद्ध हो गया। क्या मन की ऐसी निर्मलता हमें नहीं पानी चाहिए ?

विनोबा हमेशा कहा करते थे कि मैं अपने कमरे को अपने हाथ से झाड़ता हूँ और झाड़कर वह कपड़ा (झाड़न) रोज इसलिए फेंकता हूँ, ताकि मुझे ध्यान रहे कि जैसे मैं गन्दे कमरे में बैठना पसन्द नहीं करता, वैसे ही मेरे भगवान् मेरे मन की गन्दगी रहने पर मेरे भीतर बैठना क्यों पसन्द करेंगे? हम भगवान् को तो अपने अन्दर बैठाना चाहते हैं, लेकिन मन को मलिन ही बनाये रखना चाहते हैं! क्या ऐसे में भगवान् विराजेंगे! शुद्ध मन में ही विराजते हैं भगवान्। वे कहीं और से नहीं आते, वे तो अन्दर ही विराजते हैं। जितना मन शुद्ध हो जाता है, उतने हमारे भीतर प्रकट हो जाते हैं। हमारा उतना परमात्मस्वरूप प्रकट हो जाता है। जितनी मलिनता हटती जाती है उतनी निर्मलता-स्वच्छता आती जाती है।

'गुरुवाणी' (पृ. 45-50) से साभार

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अध्यात्म और सिद्धान्त

स्व. सिद्धान्ताचार्य पं. कैलाशचन्द्र जी शास्त्री

प्रारम्भ में जिनवाणी बारह अंगों और चौदह पूर्वों में विभक्त थी। अंगों और पूर्वों का लोप हो जाने पर आचार्यों ने जो ग्रन्थ रचना की है, वह उत्तरकाल में चार अनुयोगों में विभक्त हुई। उनका नाम प्रथमानुयोग, करणानुयोग, चरणानुयोग और द्रव्यानुयोग है। जिसमें एक पुरुष से सम्बद्ध कथा होती है उसे चरित कहते हैं और जिसमें त्रेसठ शलाकपुरुषों के जीवन से सम्बद्ध कथा होती है उसे पुराण कहते हैं। ये चरित और पुराण दोनों प्रथमानुयोग कहे जाते हैं। आचार्य समन्तभद्र ने इस अनुयोग को पुण्यवर्धक तथा बोधि और समाधि का निधान कहा है। अर्थात् जहाँ एक ओर इसमें उपयोग लगाने से पुण्यबन्ध होता है, वहीं दूसरी ओर रत्नत्रय की तथा उत्तम ध्यान की प्राप्ति भी इससे होती है। इस अनुयोग को प्रथम स्थान दिया गया है तथा उसे नाम भी प्रथमानुयोग दिया है। जैसे सबसे पहली कक्षा और परीक्षा का नाम प्रथमा है; क्योंकि प्राथमिकों के लिये, जो उसमें प्रवेश करना चाहते हैं, वही उपयोगी है, उसी तरह जिनवाणी में प्रवेश करनेवाले प्राथमिकों के लिये प्रथमानुयोग का स्वाध्याय उपयोगी होता है। कथाओं में रुचि होने से पाठक का मन उसमें रम जाता है और फिर धीरे-धीरे वह उसमें वर्णित रहस्य को जानने के लिये उत्सुक हो उठता है। स्व. बाबा भागीरथजी वर्णी कहा करते थे कि पद्मपुराण की कथा सुनकर मैंने पढ़ना सीखा और मैं जैनधर्म स्वीकार करके वर्णी बन गया। अतः इस अनुयोग की महत्ता किसी भी अन्य अनुयोग से कम नहीं है।

2. दूसरे अनुयोग का नाम करणानुयोग है। करण का अर्थ परिणाम भी है और गणित के सूत्रों को भी कहते हैं। इसीसे श्वेताम्बरपरम्परा में इसे गणितानुयोग भी कहते हैं। इसमें लोक और अलोक का विभाग, उत्सर्पिणी-अवसर्पिणी कालों का विभाग, तथा गति, इन्द्रिय आदि मार्गणाओं का कथन होता है। एक तरह से यह अनुयोग समस्त जिनशासन का प्राणभूत है। इसके अध्ययन से संसार में भटकते हुए संसारी जीव को अपनी वर्तमान दशा का, उसके कारणों का तथा उससे निकलने के मार्ग का सम्यक्बोध होता है। करणानुयोग जीव की आन्तरिक दशा को तोलने के लिये तुला जैसा है। करणानुयोग के अनुसार जो सम्यग्दृष्टि होता है, वही सच्चा सम्यग्दृष्टि होता है, वही संसारसागर को पार करने में समर्थ होता है।

3. तीसरे अनुयोग का नाम चरणानुयोग है। इसमें गृहस्थों और मुनियों के चारित्र का, उनकी उत्पत्ति, वृद्धि और रक्षा के उपायों का कथन रहता है। इस अनुयोग का चलन सदा विशेष रहा है। इसी के कारण आज भी जैनी-जैनी कहे जाते हैं।

4. अन्तिम चतुर्थ अनुयोग द्रव्यानुयोग है। इसमें जीव-अजीव, पुण्य-पाप, बन्ध-मोक्ष आदि पदार्थों और तत्त्वों का कथन रहता है। प्रसिद्ध मोक्षशास्त्र (तत्त्वार्थसूत्र) तथा समयसार इसी अनुयोग में गर्भित हैं।

दिगम्बरपरम्परा में जो साहित्य आज उपलब्ध हैं, उसमें सबसे प्राचीन कषायपाहुड़ और षट्खण्डागम हैं। कषायपाहुड़ की रचना आचार्य गुणधर ने और षट्खण्डागम की रचना भूतबली-पुष्पदन्त ने की थी। दोनों ही सिद्धान्तग्रन्थ पूर्वों से सम्बद्ध हैं तथा उनका मुख्य प्रतिपाद्य विषय कर्मसिद्धान्त है। भूतबली-पुष्पदन्त के गुरु आचार्य धरसेन महाकर्म प्रकृति प्राकृति के ज्ञाता थे, वही उन्होंने भूतबली-पुष्पदन्त को पढ़ाया था और उसी के आधार पर भूतबली-पुष्पदन्त ने षट्खण्डागम की रचना की थी। इसी प्रकार कषायपाहुड़ पर चूर्णिसूत्रों के रचयिता आचार्य यतिवृषभ भी आर्य नागहस्ति और आर्यमंक्षु के शिष्य थे। और नागहस्ति तथा आर्यमंक्षु भी कर्मप्रकृति प्राभृत के ज्ञाता थे। श्रुतावतारकर्ता आचार्य इन्द्रनन्दि के अनुसार आचार्य पद्मनन्दि ने कुण्डकुन्दपुर में गुरुपरिपाटी से दोनों सिद्धान्तग्रन्थों को जाना तथा षट्खण्डागम के आद्य तीन खण्डों पर परिकर्म नामक ग्रन्थ रचा। यथा -

एवं द्विविधो द्रव्यभावपुस्तकगतः समागच्छन्।
गुरुपरिपाट्यां ज्ञातः सिद्धान्तः कुण्डाकुन्दपुरे॥160॥
श्री पद्मनन्दिमुनिना सोऽपि द्वादश सहस्रपरिमाणः।
ग्रन्थ परिकर्मकर्त्ता षट्खण्डाद्यत्रिखण्डस्य॥161॥

आचार्य कुन्दकुन्द ने परिकर्म नामक ग्रन्थ रचा था, इस पर हमने कुन्दकुन्द-प्राभृत-संग्रह की प्रस्तावना में विस्तार से विचार किया है और धवला टीका में प्राप्त उद्धरणों के आधार पर इन्द्रनन्दि के उक्त कथन का समर्थन किया है।

कुन्दकुन्द-प्राभृत-संग्रह का संकलन इसी दृष्टि के किया गया है कि पाठकों को यह ज्ञात हो जाये कि कुन्दकुन्द ने किस-किस विषय पर क्या कहा है। क्योंकि परम्परा से

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

हम शास्त्र के प्रारम्भ में यह श्लोक पढ़ते हैं –

मङ्गलं भगवान् वीरो मङ्गलं गौतमो गणी।
मङ्गलं कुन्दकुन्दार्यो जैनधर्मोऽस्तु मंगलम्॥

इसमें भगवान महावीर और गौतम गणधर के पश्चात् ही आचार्य कुन्दकुन्द को मङ्गल-स्वरूप कहा है। और उनके पश्चात् जैनधर्म को मंगलस्वरूप कहा है।

उक्त श्लोक कब, किसने रचा यह ज्ञान नहीं हैं। किन्तु इससे जिनशासन में आचार्य कुन्दकुन्द का कितना महत्त्व है यह स्पष्ट हो जाता है। उत्तरकाल में भट्टारकपरम्परा का प्रवर्तन होने पर भी सबने अपने को कुन्दकुन्दाम्नायी ही स्वीकार किया है। प्रतिष्ठित मूर्तियों पर प्रायः मूलसंघ, कुन्दकुन्दान्वय का उल्लेख अंकित पाया जाता है।

इन आचार्य कुन्दकुन्द को अध्यात्म का प्रणेता या प्रमुख प्रवक्ता माना जाता है। इन्होंने जहाँ षट्खण्डागम-सिद्धान्त पर परिकर्म नामक व्याख्या रची, वहाँ इन्होंने समयसार, प्रवचनसार, पञ्चास्तिकाय, नियमसार जैसे ग्रन्थ भी रचे। इस तरह आचार्य कुन्दकुन्द सिद्धान्त और अध्यात्म दोनों के ही प्रवक्ता थे।

आचार्य कुन्दकुन्द के प्रथम टीकाकार आचार्य अमृतचन्द्र जी थे। आचार्य अमृतचन्द्र जी के टीकाग्रन्थों ने अध्यात्मरूपी प्रासाद पर कलशारोहण का कार्य किया। इसी में समयसार की टीका से आगत पद्यों के संकलनकर्ता ने उसे समयसार-कलश नाम दिया। इन्हीं कलशों को लेकर कविवर बनारसीदास ने हिन्दी में नाटक-समयसार रचा, जिसे सुनकर हृदय के फाटक खुल जाते हैं। किन्तु अमृतचन्द्र जी ने केवल समयसारादि पर टीकाएँ ही नहीं लिखीं, तत्त्वार्थसूत्र के आधार पर तत्त्वार्थसार जैसा ग्रन्थ भी रचा तथा जैन श्रावकाचार पर पुरुषार्थसिद्ध्युपाय जैसा ग्रन्थ रचा। और उनका एक अमूल्य ग्रन्थरत्न तो अभी ही प्रकाश में आया, जिसमें 25-25 श्लोकों के 25 प्रकरण हैं। यह स्तुतिरूप ग्रन्थरत्न एक अलौकिक कृति जैसा है। अत्यन्त क्लिष्ट है, शब्द और अर्थ दोनों ही दृष्टियों से अति गम्भीर हैं। विद्वत्परिषद् के मंत्री पं. पन्नालाल साहित्याचार्य ने बड़े श्रम से श्लोकों का अभिप्राय स्पष्ट करने का प्रयत्न किया है। उसी के आधार पर अंग्रेजी अनुवाद के साथ यह ग्रन्थरत्न सेठ दलपतभाई, लालभाई जैन विद्या संस्थान अहमदाबाद से प्रकाशित हुआ है। उससे व्यवहार और निश्चय दृष्टि पर विशेष प्रकाश पड़ने की पूर्ण सम्भावना है।

यह सब लिखने का मेरा प्रयोजन यह है कि आज जो सिद्धान्त और अध्यात्म या व्यवहार और निश्चय के मध्य में भेद की दीवार जैसी खड़ी की जा रही है, उसकी ओर से सम्बुद्ध पाठकों और विद्वानों को सावधान करूँ। सबसे प्रथम हमें यह देखना होगा कि सिद्धान्त की क्या परिभाषा है और अध्यात्म की क्या परिभाषा है। षट्खण्डागम सिद्धान्त के नाम से प्रसिद्ध है। जयधवला की प्रशस्ति में टीकाकार जिनसेनाचार्य ने लिखा है – **'सिद्धानां कीर्तनादन्ते यः सिद्धान्तः प्रसिद्धिभाक्।'** अर्थात् सिद्धों का वर्णन अन्त में होने से, जो सिद्धान्त नाम से प्रसिद्ध है। इसका आशय यह है कि **संसारी जीव का वर्णन प्रारम्भ करके उसके सिद्ध पद तक पहुँचने की प्रक्रिया का जिसमें वर्णन होता है, उसे सिद्धान्त कहते हैं**, जैसे तत्त्वार्थसूत्र में संसारी जीव के स्वरूप का वर्णन प्रारम्भ करके अन्तिम दसवें अध्याय के अन्त में सिद्धों का वर्णन है। इसी प्रकार जीवकाण्ड में गुणस्थानों और मार्गणाओं के द्वारा जीव का वर्णन करके अन्त में कहा है –

गुणजीवठाणरहिया सण्णा पज्जत्ति पाणपरिहीणा।
सेस णवमग्गणूणा सिद्धा सुद्धा सदा होंति॥ 732॥

अर्थात् सिद्ध जीव गुणस्थान से रहित, जीवस्थान से रहित, संज्ञा-पर्याप्ति-प्राण से रहित और चौदह में से नौ मार्गणाओं से रहित सदा शुद्ध होते हैं। अतः तत्त्वार्थसूत्र, गोम्मटसार जैसे ग्रन्थ जो षट्खण्डागम सिद्धांत के आधार पर रचे गये हैं, **सिद्धान्त** कहे जाते हैं।

एक शुद्ध आत्मा को आधार बनाकर जिसमें कथन होता है उसे **अध्यात्मग्रन्थ** कहते हैं। जैसे समयसार के जीवाजीवाधिकार के प्रारम्भ में कहा है कि जीव के रूप, रस, गन्ध, स्पर्श, संस्थान, संहनन, वर्ग, वर्गणा, जीवस्थान, बन्धस्थान आदि नहीं हैं। अर्थात् गोम्मटसार में प्रारम्भ से ही जिन बातों को आधार बनाकर संसारी जीव का वर्णन किया गया है, समयसार के प्रारम्भ में ही शुद्ध जीव का स्वरूप बतलाने की दृष्टि से उन सबका निषेध किया है। इससे पाठक भ्रम में पड़ जाता है और वह अपनी दृष्टि से एक को गलत और दूसरे को ठीक मान बैठता है। इसी से विवाद पैदा होता है। जिसने पहले गोम्मटसार पढ़ा है, वह समयसार को पढ़कर विमूढ़ जैसा हो जाता है और जो समयसार पढ़ते हैं वे सिद्धांतग्रन्थों से ही विमुख हो जाते हैं, क्योंकि सिद्धांतग्रन्थों में उन्हीं का वर्णन है, जिन्हें समयसार में जीव का नहीं कहा। **अतः वे केवल शुद्ध जीव का वर्णन सुनकर ही आत्म विभोर हो जाते हैं और अपनी वर्तमान दशा और उसके कारणों को सुनना भी व्यर्थ समझते हैं। फलतः आज समयसार का**

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

रसिया शेष जिनवाणी को ही हेय मान बैठता है। उसकी दृष्टि में यदि उपादेय है, तो केवल समयसार है, शेष सब हेय हैं। न उसे चरणानुयोग रुचिकर है और न करणानुयोग रुचिकर है। ऐसे लोगों के लिये ही अमृतचंद्र जी ने पञ्चास्तिकाय की अपनी टीका के अन्त में एक गाथा उद्धृत की है -

णिच्चयमालंबंता णिच्चयदो णिच्चयं अजाणंता।
णासंति चरणकरणं बाहिरचरणालसा केई॥

अर्थात् निश्चय का आलम्बन लेनेवाले, किन्तु निश्चय से निश्चय को न जानने वाले कुछ जीव बाह्य आचरण में आलसी होकर चरणरूप परिणाम का विनाश करते हैं।

इसी प्रकार जो प्रारम्भ से ही व्यवहारासक्त हैं और उसे ही एक मात्र मोक्ष का कारण मानकर निश्चय से इसलिये विरक्त हैं कि पूर्व में उन्होंने कभी निश्चय की चर्चा नहीं सुनी। **अतः प्रायः ऐसे लोग, जिनमें विद्वान् और त्यागी व्रती भी हैं, समयसार की चर्चा से या आत्मा की चर्चा से भड़क उठते हैं। उसे वे सुनना भी पसन्द नहीं करते। कोई-कोई तो समयसार के रचयिता होने के कारण आचार्य कुन्दकुन्द से भी विमुख जैसे हो गये हैं और क्रियाकाण्ड को ही मोक्ष का मार्ग मानकर उसी में आसक्त रहते हैं।** ऐसे व्यवहारवादियों को भी लक्ष्य करके अमृतचंद्र जी ने पंचास्तिकाय की अपनी टीका में एक गाथा उद्धृत की है -

चरणकरणप्पहाणा ससमयपरमत्थमुक्कवावाहा।
चरणकरणस्स सारं णिच्छयसुद्धं ण जाणंति॥

अर्थात् जो चारित्र-परिणाम-प्रधान हैं अर्थात् शुद्ध आत्मा के सम्यक् श्रद्धान, ज्ञान, अनुष्ठान रूप निश्चयमोक्षमार्ग से उदासीन रहकर या उसकी उपेक्षा करके केवल शुभानुष्ठानरूप व्यवहारमार्ग को ही मोक्षमार्ग मानते हैं और स्व-समयरूप परमार्थ में व्यापाररहित हैं, वे चारित्र-परिणाम का सार जो निश्चय शुद्ध आत्मा है, उसे नहीं जानते। इसीसे समयसार की गाथा 12 की टीका में अमृतचन्द्र जी ने एक गाथा उद्धृत की है -

जइ जिणमयं पवज्जह ता मा ववहारणिच्छए मुयह।
एक्केण विणा छिज्जइ तित्थं, अण्णेण पुण तच्चं॥

अर्थात् यदि जैनमत का प्रवर्तन चाहते हो, तो व्यवहार और निश्चय इन दोनों को मत छोड़ो, क्योंकि एक व्यवहारनय के बिना तो तीर्थ का नाश हो जायेगा और दूसरे निश्चय के बिना तत्त्व (वस्तुस्वरूप) का विनाश हो जायेगा।

इसके पश्चात् ही अमृतचन्द्र जी ने नीचे लिखा स्वर्णकलश कहा है -

उभयनयविरोधध्वंसिनि स्यात्पदाङ्के
जिन वचसि रमन्ते ये स्वयं वान्तमोहाः।
सपदि समयसारं ते परं ज्योतिरुच्चै -
रनवमनयपक्षाक्षुण्णमीक्षन्त एव॥

निश्चय और व्यवहार में परस्पर विरोध है, क्योंकि एक शुद्ध द्रव्य का निरूपक है और दूसरा अशुद्ध द्रव्य का। उस विरोध को दूर करनेवाले भगवान् जिनेन्द्र के स्यात्पद से अंकित वचन हैं अर्थात् स्याद्वादनय गर्भित द्वादशांग वाणी है। जो उसमें रमण करते हैं, प्रीतिपूर्वक उसका अभ्यास करते हैं, वे स्वयं मिथ्यात्व का वमन करके परमस्वरूप, अतिशय प्रकाशमान उस शुद्ध आत्मा का अवलोकन करते हैं, जो नया नहीं है तथा एकान्तनयके पक्ष से अखण्डित है।

सिद्धान्त और अध्यात्म दोनों का ही चरम लक्ष्य यही है, भिन्न नहीं है। किन्तु दोनों की कथन शैली में अन्तर है। जहाँ तक हम जान सके, सिद्धान्त और अध्यात्म के इस अन्तर को ब्रह्मदेवजी ने अपनी द्रव्यसंग्रहटीका में स्पष्ट किया है। गाथा 13 में संसारी जीव के अशुद्धनय से चौदह मार्गणा और गुणस्थानों की अपेक्षा चौदह भेद कहे हैं। और शुद्धनय से सब जीवों को शुद्ध कहा है। इसकी टीका में कहा है कि '**गुणजीवापज्जत्ती**' आदि गाथा में जो बीस प्ररूपणा कही हैं, वह धवल, जयधवल और महाधवल नामक तीन सिद्धान्त ग्रन्थों के बीजपदभूत है। और गाथा के चतुर्थ पाद में जो '**सव्वे सुद्धा हु सुद्धणया**' कहा है, जो कि शुद्ध आत्मतत्त्व का प्रकाशक है, वह पञ्चास्तिकाय, प्रवचनसार, समयसार नामक प्राभृतों का बीजपदभूत है। इसी में आगे कहा है कि अध्यात्मग्रन्थ का बीजपदभूत, जो शुद्ध आत्मस्वरूप कहा है, वही उपादेय है।

इस तरह सिद्धान्त संसारी जीव की वर्तमान दशा का चित्रण करता है, जो शुद्ध जीव का स्वरूप न होने से व्यवहारनय का विषय है तथा हेय है। अध्यात्म शुद्ध आत्मतत्त्व का प्रकाशक है, जो निश्चयनय का विषय है तथा उपादेय है।

हेय और उपादेय

जो संसारी जीव आत्महित करना चाहता है, उसे सबसे प्रथम हेय और उपादेय का बोध होना आवश्यक है। यदि कदाचित् उसने हेय को उपादेय और उपादेय को हेय मान लिया, तो वह आत्महित नहीं कर सकता। इसीसे आगम में तत्त्वार्थ के श्रद्धान को सम्यक्त्व कहा है। अतः मुमुक्षु को तत्त्वार्थ का विचार करके उसकी श्रद्धा करनी चाहिये। इस विषय में आगम या सिद्धान्त और अध्यात्म में भेद नहीं है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तत्त्वार्थसूत्र में तत्त्वार्थश्रद्धान को सम्यक्त्व कहा है। समयसार में भूतार्थनय से जाने गये तत्त्वार्थ के श्रद्धान को सम्यक्त्व कहा है। मूल तत्त्व तो दो ही हैं - जीव और अजीव। इन्हीं के मिलन के फलस्वरूप आस्रव और बन्ध तत्त्व की निष्पत्ति हुई। वे ही दो संसार के कारण हैं। ओर संसार से छूटने के उपाय संवर-निर्जरा हैं, उनका फल मोक्ष हैं। इनमें पुण्य और पाप को मिलाने से नौ पदार्थ हो जाते हैं। तत्त्वार्थसूत्र की टीका सर्वार्थसिद्धि, तत्त्वार्थवार्तिक आदि में यह स्पष्ट किया है कि पुण्य और पाप का अन्तर्भाव आस्रव और बन्ध तत्त्व में होता है। इसलिये इन्हें पृथक् तत्त्व नहीं माना है। अतः आस्रव और बन्ध तत्त्व संसार के कारण होने से हेय हैं, तब उनमें गर्भित पुण्य और पापकर्म उपादेय कैसे हो सकते हैं और उनमें उपादेय बुद्धि रखने वाला सम्यग्दृष्टि कैसे हो सकता है ?

यह ठीक है कि शास्त्रकारों ने पुण्यकार्य करने की प्रेरणा की है; क्योंकि जीव को पाप कार्यों से बचाना है। अतः पुण्यकर्म की उपयोगिता पाप से बचने मात्र में है। किन्तु इससे पुण्य उपादेय नहीं हो जाता। सम्यग्दृष्टि भी पुण्य कार्य करता है, किन्तु पुण्यास्रव या पुण्यबन्ध को उपादेय नहीं मानता। इसी से किन्हीं ग्रन्थकार ने सम्यग्दृष्टि के पुण्य को परम्परा से मोक्ष का कारण कह दिया है।

भावसंग्रह में आचार्य देवसेन ने इस विषय में जो कुछ कहा है वह पठनीय है। वह कहते हैं कि जब तक गृहव्यापार नहीं छूटता, तब तक गृहव्यापार में होनेवाला पाप भी नहीं छूटता। और जब तक पाप कार्यों का परिहार न हो, तब तक पुण्यबन्धक कार्यों को मत छोड़ो, अन्यथा दुर्गति में जाना होगा। जिसने गृहव्यापार से विरक्त होकर जिनमुद्रा धारण की है और प्रमादी नहीं है, उसे पुण्यबन्ध के कारणों का त्याग करना चाहिये। **पुण्यबन्ध बुरा नहीं है, पुण्यबन्ध की चाह बुरी है।** स्वामी-कार्तिकेयानुप्रेक्षा (गा. 410 आदि) में कहा है जो पुण्य की भी इच्छा करता है, वह संसार की इच्छा करता है, क्योंकि पुण्यबन्ध सुगति का कारण है और मोक्ष पुण्य के क्षय से प्राप्त होता है। पुण्य की चाह से पुण्यबन्ध नहीं होता। किन्तु जो पुण्य को नहीं चाहते, उनके ही सातिशय पुण्यबन्ध होता है। मन्द कषाय से पुण्यबन्ध होता है। अतः पुण्य का हेतु मन्द कषाय है और मन्दकषाय सम्यग्दृष्टि के ही होती है। क्योंकि वह पुण्य से प्राप्त होने वाले सांसारिक सुख को पाप का बीज मानता है। इसलिये वह न ऐसे सुख की वाँछा करता है और न ऐसे सुख के कारण पुण्यबन्ध की भावना करता है। आचार्य कुन्दकुन्द ने प्रवचनसार में जिस अरहन्त अवस्था को पुण्य का फल कहा है, वह पुण्य ऐसा ही होता है, जो नहीं चाहते हुए भी बँधता है।

सम्यग्दृष्टि श्रावक तो जिनपूजन प्रारम्भ करते हुए भावना भाता है -

अस्मिन् ज्वलद्विमलकेवलबोधवह्नौ
पुण्यं समग्रमहमेकमना जुहोमि।

मैं इस प्रज्वलित निर्मल केवलज्ञानरूप अग्नि में एकाग्रमन होकर समग्र पुण्य की आहुति देता हूँ। इस प्रकार जो पुण्यकार्य करते हुए पुण्य की आहुति देते हैं, उनकी भावना परम्परा से मोक्ष का कारण होती है।

अतः उक्त तत्त्वों में उपादेय जो एक जीव तत्त्व ही है, उसी की यथार्थ श्रद्धा से सम्यक्त्व की प्राप्ति होती है। इसमें कोई मतभेद नहीं है।

तत्त्वार्थसूत्र में जीव के पाँच भाव कहे हैं - औपशमिक, क्षायोपशमिक, क्षायिक, औदयिक एवं पारिणामिक। इन पाँचों भावों में से किस भाव से मोक्ष होता है, इसका खुलासा आगम और अध्यात्म दोनों में किया गया है।

धवला और जयधवला (पु. 1, पृ. 5) टीका से एक गाथा उद्धृत है -

ओदइया बंधयरा उवसमखयमिस्सया हु मोक्खयरा।
भावो हु पारिणामिओ करणोभयवज्जिओ होइ॥

समयसार की टीका में जयसेनाचार्य ने आगम और अध्यात्म का समन्वय करते हुए लिखा है- औदयिक भाव बन्धकारक हैं। औपशमिक, क्षायिक, मिश्रभाव मोक्षकारक हैं। किन्तु पारिणामिकभाव बन्ध का भी कारण नहीं है और मोक्ष का भी कारण नहीं है। औपशमिक, क्षायोपशमिक, क्षायिक और औदयिक भाव पर्यायरूप हैं। शुद्ध पारिणामिक द्रव्यरूप है। और परस्परसापेक्ष द्रव्यपर्यायरूप आत्मद्रव्य है। उनमें से जीवत्व, भव्यत्व, अभव्यत्व इन तीन पारिणामिक भावों में से शक्तिरूप शुद्धजीवत्व-पारिणामिकभाव शुद्धद्रव्यार्थिकनय से निरावरण है। उसकी संज्ञा शुद्धपारिणामिक है। वह बन्ध और मोक्ष पर्यायरूप परिणति से रहित है। और जो दस प्राणरूप जीवत्व, भव्यत्व तथा अभव्यत्व हैं, वे पर्यायार्थिक नयाश्रित होने से अशुद्ध पारिणामिक भाव कहलाते हैं। इन तीनों में से भव्यत्व पारिणामिक भाव को ढाँकनेवाला पर्यायार्थिकनय से जीव के सम्यक्त्व आदि गुणों का घातक मोहादि कर्म है। जब कालादि लब्धिवश भव्यत्व शक्ति की व्यक्ति होती है, तब यह जीव सहज शुद्ध पारिणामिकभाव-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

लक्षणवाले निज परमात्मद्रव्य के सम्यक् श्रद्धान, सम्यक्ज्ञान और सम्यक् अनुचरण रूप पर्याय से परिणमन करता है। इस परिणमन को आगम की भाषा में औपशमिक, क्षायोपशमिक या क्षायिक भाव कहते हैं और अध्यात्म की भाषा में शुद्धात्मा के अभिमुख परिणाम या शुद्धोपयोग आदि कहते हैं।

इस तरह आगम और अध्यात्म में सम्यग्दर्शन की उत्पत्ति का क्रमादि भिन्न नहीं है। जिसे करणानुयोग, चरणानुयोग में औपशमिक आदि नामों से कहते हैं, उसे ही अध्यात्म में शुद्धोपयोग शब्द से कहते हैं। अतः अध्यात्म में अविरत सम्यग्दृष्टि को भी शुद्धोपयोगी कहा है। **शुद्धोपयोग शब्द का भी एक ही अर्थ नहीं है। शुद्ध उपयोग तो यथार्थ में ऊपर के गुणास्थानों में होता है। किन्तु शुद्ध के लिये उपयोग और शुद्ध का उपयोग नीचे के गुणस्थानों में भी होता है। इसी से शुद्धात्मा के प्रति अभिमुख परिणाम को भी शुद्धोपयोग कहा है। उसके बिना आगे के गुणस्थानों में शुद्ध उपयोग होना संभव नहीं है।**

किसी भी अनुयोग में सम्यग्दर्शन का महत्त्व निर्विवाद है। सम्यग्दर्शन के बिना न ज्ञान सम्यक् होता है और न चारित्र। सम्यग्दर्शन के अभाव में दिगम्बरमुनि भी मुनि नहीं है, यह आगम का विधान है। सम्यग्दर्शन के होने पर ही अनन्तसंसार सान्त होता है। छहढाला में जो कहा है -

मुनिव्रतधार अनन्तवार ग्रैवेयक उपजायो।
पे निज आत्मज्ञान बिना सुखलेश न पायो॥

यह सम्यग्दर्शन विहीन मुनिव्रत के लिये ही कहा है, क्योंकि द्रव्यलिंगी मिथ्यादृष्टि भी नौग्रैवेयक तक जा सकता है। अतः सम्यग्दर्शनविहीन चारित्र से भी स्वर्गसुख मिल सकता है, किन्तु मोक्षलाभ नहीं हो सकता। जो सांसारिक सुख की कामना से धर्माचरण करते हैं, वे धर्मात्मा कहलाने के पात्र नहीं हैं। किन्तु जो मोक्ष सुख की कामना से धर्म करते हैं, वे सच्चे धर्मात्मा होते हैं और यथार्थ धर्म वही है जिससे कर्म कटते हैं।

शुभोपयोग का धर्म के साथ सम्बन्ध

तब प्रश्न होता है कि शुभोपयोग धर्म है या नहीं है ? और उसे करना चाहिये या नहीं ?

प्रवचनसार गाथा 11 में कहा है जब यह धर्मपरिणत स्वभाव आत्मा शुद्धोपयोग रूप परिणमन करता है, तब निर्वाण सुख पाता है और यदि शुभोपयोगरूप परिणमन करता है, तब स्वर्गसुख प्राप्त करता है अर्थात् उसके पुण्यबन्ध होता है।

यहाँ उल्लेखनीय बात यह है कि धर्मपरिणत आत्मा ही शुभोपयोगी होता है, अतः उसे अधर्मात्मा तो नहीं कह सकते। आचार्य अमृतचन्द्रजी ने इसकी उत्थानिका में शुद्धपरिणाम की तरह शुभपरिणाम का सम्बन्ध चारित्रपरिणाम के साथ बतलाया है - "**अथ चारित्रपरिणाम सम्पर्क-सम्भववतोः शुद्धशुभपरिणामयोः।**" किन्तु शुभोपयोगी के चारित्र को कथंचिद् विरुद्ध कार्यकारी कहा है। अतः जैसे शुद्धोपयोग की तुलना में शुभोपयोग हेय है उसी प्रकार अशुभपयोग की तुलना में शुभोपयोग हेय नहीं है। अतः उसे अशुभोपयोग की तरह सर्वथा हेय कहना उचित नहीं है और न सर्वथा उपादेय कहना ही उचित है। क्योंकि शुभोपयोग के रहते हुए निर्वाण लाभ सम्भव नहीं है।

प्रवचनसार में ही गाथा 245 में श्रमणों के दो भेद किये हैं - शुद्धोपयोगी और शुभोपयोगी। शुद्धोपयोगी अनास्रव होते हैं और शुभोपयोगी सास्रव होते हैं।

इसकी टीका में अमृतचन्द्रजी ने यह प्रश्न उठाया है कि जो मुनिपद धारण करके भी कषाय का लेश जीवित होने से शुद्धोपयोग की भूमिका पर चढ़ने में असमर्थ हैं, वे क्या श्रमण नहीं हो सकते ? उत्तर में प्रवचनसार की प्रारम्भ की गाथा 11 का प्रमाण देकर अमृतचन्द्रजी ने जोर देकर कहा है कि शुभोपयोग का धर्म के साथ एकार्थसमवाय है अर्थात् धर्म और शुभोपयोग एक साथ रह सकते हैं, इसलिये धर्म का सद्भाव होने से श्रमण शुभोपयोगी भी होते हैं, किन्तु वे शुद्धोपयोगी श्रमणों के तुल्य नहीं होते।

आगे गाथा 254 की टीका में अमृतचन्द्रजी ने कहा है कि श्रमणों के शुभोपयोग की मुख्यता नहीं रहती, गौणता रहती है, क्योंकि वे महाव्रती होते हैं और महाव्रत या समस्त विरति शुद्धात्मा की प्रकाशक है, किन्तु गृहस्थों के तो समस्तविरति नहीं होती, अतः उनके शुद्धात्मा के प्रकाशन का अभाव होने से तथा कषाय का सद्भाव होने से शुभोपयोग की मुख्यता है। तथा जैसे स्फटिक के सम्पर्क से सूर्य की किरणों का संयोग पाकर ईंधन जल उठता है, उसी प्रकार गृहस्थ को राग के संयोग से शुद्धात्मा का अनुभव होने से वह शुभोपयोग क्रम से परमनिर्वाण सुख का कारण होने से मुख्य है।

इस प्रकार आचार्य अमृतचन्द्र जी ने श्रावक के शुभोपयोग की मुख्यता स्वीकार की है। सिद्धान्त तो यह स्वीकार करता ही है। किन्तु वह शुभोपयोग शुद्धोपयोग सापेक्ष होना चाहिये। निज शुद्धात्मा ही उपादेय है इस प्रकार की

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

रुचि शुभोपयोगी को होती है, तभी वह शुभोपयोग, शुभोपयोग कहलाता है।

आचार्य अमृतचन्द्रजी ने अपने पुरुषार्थसिद्ध्युपाय के अन्त में कहा है कि एकदेश रत्नत्रय का पालन करनेवालों के जो कर्मबन्ध होता है, उसका कारण एकदेश रत्नत्रय नहीं है किन्तु उसके साथ में जो शुभरागरूप शुभोपयोग रहता है, वह उस कर्म का कारण है। वह श्लोक इस प्रकार है -

असमग्रं भावयतो रत्नत्रयमस्ति कर्मबन्धो यः।
स विपक्षकृतोऽवश्यं मोक्षोपायो न बन्धनोपायः॥

इसका अन्वयार्थ इस प्रकार है - (असमग्रं) एकदेश (रत्नत्रयं) रत्नत्रय को (भावयतः) पालन करने वाले के (यः कर्मबन्धोऽस्ति) जो कर्मबन्ध होता है, (स अवश्यं) वह अवश्य ही (विपक्षकृतः) विपक्ष रागादिकृत है।

यह तीन चरणों का अर्थ है। अन्तिम चरण स्वतन्त्र है, वह उक्त कथन के समर्थन में युक्ति है कि वह बन्ध रत्नत्रयकृत क्यों नहीं है, रागकृत क्यों है ? **क्योंकि (मोक्षोपायः) जो मोक्ष का कारण होता है वह (बन्धनोपायो न) बन्ध का कारण नहीं होता।** आगे अमृतचन्द्रजी ने अपने इसी कथन की पुष्टि की है कि जितने अंश में सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र है उतने अंश से बन्ध नहीं है, जितने अंश में राग है उतने अंश में बन्ध होता है।

किन्तु इतने स्पष्ट कथन के होते हुए भी कुछ विद्वान् उक्त श्लोक के चतुर्थ चरण को भी पहले के चरणों के साथ मिलाकर ऐसा अर्थ करते हैं कि वह विपक्षकृत बन्ध अवश्य ही मोक्ष का उपाय है, बन्धन का उपाय नहीं है। किसी भी सिद्धान्तग्रन्थ में कर्मबन्ध को, भले ही वह पुण्यबन्ध हो, मोक्ष का अवश्य उपाय नहीं कहा है। फिर अमृतचन्द्रजी तो आगे ही लिखते हैं - **'आस्रवति यत्तु पुण्यं शुभोपयोगस्य सोऽयमपराधः।'**

'जो पुण्य का आस्रव होता है, वह तो शुभोपयोग का अपराध है।' जो ग्रन्थकार पुण्यास्रव को शुभोपयोग का अपराध कहता है, वह उस अपराध को मोक्ष का उपाय कैसे कह सकता है ?

इस प्रकार मुझे तो सिद्धान्त और अध्यात्म में कोई विरोध प्रतीत नहीं होता। विरोध तो सिद्धान्त और अध्यात्म का पक्ष लेने वालों में है और वह तब तक दूरी नहीं हो सकता, जब तक वे अमृतचन्द्रजी के शब्दों में अपने मोह को स्वयं वमन करके सिद्धान्त-अध्यात्म रूप जिनवचन में रमण नहीं करते। पक्षव्यामोह को त्यागे बिना जिनवाणी का रहस्य उद्घाटित नहीं होता; जिनवाणी स्याद्वादनयगर्भित है। जितने वचन के मार्ग हैं, उतने ही नयवाद हैं, अतः नयदृष्टि के बिना जिनागम के वचनों का समन्वय नहीं हो सकता। इसी से आचार्य देवसेन ने नयचक्र में कहा -

जे णयदिट्ठिविहीणा ताण ण वत्थुसरूवउवलद्धी।
वत्थुसरूवविहीणा सम्मादिट्ठी कहं होंति॥

'जिनके नयरूपी दृष्टि नहीं है, उन्हें वस्तु स्वरूप की उपलब्धि नहीं हो सकती, और वस्तु-स्वरूप की उपलब्धि के बिना सम्यग्दृष्टि कैसे हो सकते हैं ?'

किन्तु आज तो सम्यक्त्व के लिये वस्तुस्वरूप की उपलब्धि को आवश्यक नहीं माना जाता। आज तो चारित्र धारण कर लेने मात्र से ही सब समस्या हल हो जाती है। आगम और अध्यात्म में प्रतिपादित धर्म सम्यक्त्व से प्रारम्भ होता है। किन्तु आज के लोकाचार का धर्म सम्यक्त्व से नहीं, चारित्र से प्रारम्भ होता है। इस उल्टी गंगा के बहने से न व्यक्ति ही लाभान्वित होता है और न समाज ही। इस स्थिति पर सभी को शान्ति से विचार करना चाहिये। आचार्य समन्तभद्र के अनुसार जिनेन्द्र शासन में कोई विरोध नहीं है, विरोध हममें हैं।

'श्री आदिनाथ जिनेन्द्र बिम्बप्रतिष्ठा एवं गजरथ महोत्सव मदनगंज-किशनगढ़ (राज.) सन् 1979 स्मारिका' से साभार

- **जाति, देह के आश्रित है और देह आत्मा के संसार का कारण है। इसलिए जो जाति का अभिमान करनेवाले हैं, वे संसार से छूट नहीं सकते।**
- **जिस प्रकार दूध पौष्टिक होने के साथ-साथ औषधिस्वरूप भी है, उसी प्रकार विद्वत्ता लौकिक प्रयोजन-साधक होती हुई मोक्ष का कारण भी होती है।**

'वीरदेशना' से साभार

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मोक्ष मार्ग की द्विविधिता

मूलचंद लुहाड़िया

जैन साहित्य के प्रथम संस्कृत सूत्रग्रंथ मोक्षशास्त्र के प्रथम अध्याय के प्रथम सूत्र "**सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्राणि मोक्षमार्गः**" के द्वारा मोक्षमार्ग का वर्णन किया गया है। यह जीव बँधा हुआ है, परतंत्र है, इसी कारण दुःखी है। इस बंधन से मुक्त होने पर सुखी हो सकता है, इसलिए मोक्ष (मुक्त अवस्था) प्राप्त करने का पुरुषार्थ ही इस जीव का मुख्य उद्देश्य होना चाहिए। जीव के भौतिक बंधन यह देह और पौद्गलिक कर्म हैं, जो जीव को बलात् देह के बंधन में बाँधे रखकर कर्मो के फलों को भोगने के लिए विवश करते हैं।

इन भौतिक बंधनों के मूल कारण अंतरंग बंधन वैचारिक बंधन है। उन वैचारिक बंधनों की ओर इस जीव का प्रायः ध्यान नहीं जाता है। वस्तुतः इस जीव को भौतिक बंधन भी वैचारिक बंधन के अस्तित्व में ही दुःखी कर पाते हैं। वैचारिक असमीचीनता ही वैचारिक बंधन है। जीव की अंतरंग अथवा वैचारिक परिणति श्रद्धा, ज्ञान और चारित्र के रूप में तीन प्रकार की होती है। श्रद्धा, ज्ञान और चारित्र की मिथ्या परिणति बंधन है, दुःख का कारण है और श्रद्धा चारित्र की समीचीन परिणति बंधनमुक्ति (मोक्ष) का कारण है या मोक्षमार्ग है।

आचार्य उमास्वामी महाराज ने मोक्षमार्ग शब्द का एक वचनात्मक प्रयोग कर एक ही मोक्षमार्ग है, ऐसा कहा है। किंतु आचार्य अमृतचन्द्र ने मोक्षमार्ग को दो प्रकार का बताया है-

निश्चयव्यवहाराभ्यां मोक्षमार्गो: द्विधा स्थिता।
तत्रादौ साध्यरूपं स्याद्द्वितीयस्तस्य साधनम्॥

इसी बात को छहढालाकार पं. दौलतराम जी ने इस प्रकार कहा है-

सम्यग्दर्शन ज्ञान चरण शिवमग सो दुविध विचारो।
जो सत्यारथ रूप सो निश्चय कारण सो व्यवहारो॥

सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र अर्थात् रत्नत्रय की एकतारूप मोक्षमार्ग वस्तुतः एक प्रकार का ही है। दो प्रकार के मोक्ष मार्ग का प्ररूपण दो अलग-अलग मार्ग होने की दृष्टि से नहीं किया गया है, किंतु रत्नत्रय की आंशिक एवं पूर्ण अवस्था को दृष्टि में रखकर दो भेदों का प्ररूपण किया गया है। यद्यपि मोक्षमार्ग तो रत्नत्रय की एकता के रूप में एक ही है, तथापि सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्र की उत्पत्ति से लेकर पूर्णता को प्राप्त होने तक के काल में रहनेवाले अपूर्ण रत्नत्रय को व्यवहार-रत्नत्रय या व्यवहारमोक्षमार्ग कहा गया है और रत्नत्रय की पूर्णता को प्राप्त होने पर तुरंत मोक्ष को प्राप्त करा देनेवाले पूर्ण रत्नत्रय को निश्चयमोक्षमार्ग बताया गया है। व्यवहार और निश्चय एक ही रत्नत्रय की पूर्वोत्तर अवस्थाएँ है। रत्नत्रय के सत्यार्थ रूप को अर्थात् उसके पूर्ण रूप को निश्चयमोक्षमार्ग और उस पूर्ण रूप के कारणभूत अपूर्ण रत्नत्रय को व्यवहार मोक्षमार्ग बताया गया है। इस प्रकार रत्नत्रयरूप मोक्षमार्ग एक होते हुए भी पूर्वोत्तर अवस्थाओं के भेद को दृष्टि में रखकर दो प्रकार का निरूपण किया गया है। व्यवहार मोक्षमार्ग एवं निश्चय मोक्षमार्ग में साधनसाध्य अथवा कारण-कार्यसंबंध है। निश्चय रत्नत्रय प्राप्त होते ही तुरंत मोक्ष प्राप्त हो जाता है। यही मोक्षमार्ग का अथवा रत्नत्रय का सत्यार्थ या पूर्ण रूप है। इस सत्यार्थ रूप निश्चय या पूर्ण रत्नत्रय की प्राप्ति का कारणभूत वह उत्पत्ति से लेकर पूर्णता को प्राप्त होने के काल तक पाया जाने वाला व्यवहाररत्नत्रय है। यद्यपि व्यवहाररत्नत्रय से तुरंत मोक्ष प्राप्त नहीं होता है, तथापि व्यवहार रत्नत्रय से निश्चयरत्नत्रय और निश्चयरत्नत्रय से तुरंत मोक्ष प्राप्त हो जाता है। इसलिए व्यवहाररत्नत्रय भी मोक्ष के साक्षात् कारण का कारण होने से मोक्ष का परंपरा-कारण कहा जाना चाहिए।

व्यवहार सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्र को सराग सम्यग्दर्शन-ज्ञानचारित्र एवं निश्चय सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्र को वीतराग सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्र भी कहते हैं। रत्नत्रय की अपूर्ण दशा में आत्मा में संज्वलनजनित, प्रत्याख्यानावरणजनित अथवा अप्रत्याख्यानावरणजनित रागभाव रहता है, अतः उस समय रागभावसहित सम्यग्दर्शनज्ञानचरित्र रहते हैं। रत्नत्रय की पूर्णता होने पर पूर्ण वीतराग दशा प्राप्त हो जाती है अतः उस समय का सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्र वीतराग नाम पा जाता है। रत्नत्रय के सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्र रूप तीन भेद, व्यवहार या सराग दशा में ही अनुभव में आते हैं, किंतु सम्पूर्ण कषायों के अभाव से उत्पन्न वीतराग दशा प्राप्त हो जाने पर भेद का विकल्प ही अनुभव में नहीं रहता। अतः वीतराग या निश्चय रत्नत्रय को अभेदरत्नत्रय एवं सराग या व्यवहाररत्नत्रय को भेदरत्नत्रय भी कहते है।

इस प्रकार जिनागम में सम्यग्दर्शनज्ञानचरित्र रूप एक

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

ही मोक्षमार्ग का अनेकांत का सहारा लेकर व्यवहार-निश्चय, सराग-वीतराग, भेद-अभेद, कारण-कार्य के रूप में साधार वर्णन किया गया है।

कुछ स्वाध्यायशील सज्जन जिनागम के उपर्युक्त अनेकांतात्मक उल्लेखों की अनदेखी करते हुए अपनी एकांत धारणाओं को पुष्ट करते हुए निम्न धारणाएँ रखते हैं-

1. निश्चयसम्यग्दर्शन पहले होता है, व्यवहार सम्यग्दर्शन बाद में होता है।

2. व्यवहारसम्यग्दर्शन वास्तव में सम्यग्दर्शन ही नहीं है।

3. शुभराग रूप देशव्रत अथवा महाव्रत धर्म नहीं हैं। इनको धर्म मानना मिथ्यात्व है।

आगम में व्यवहार-निश्चय सम्यग्दर्शनज्ञानचरित्र का विश्लेषण किया गया है। निश्चयरत्नत्रय का छहढालाकार ने निम्न प्रकार वर्णन किया।

पर द्रव्यनतैं भिन्न आप में रुचि सम्यक्त्व भला है।
आप रूप को जानपनों सो सम्यग्ज्ञान कला है।
आप रूप में लीन रहे थिर सम्यकचरित्र सोई।
अब व्यवहार मोक्ष मग सुनिए हेतु नियत को होई॥

पर द्रव्यों से भिन्न अपने आत्मतत्व के प्रति रुचि होना निश्चय सम्यग्दर्शन है। अपने आत्मा को जानना निश्चय सम्यक् चारित्र है। उक्त निश्चय रत्नत्रय की प्राप्ति स्वयं की आत्मा में पूर्ण वीतराग दशा प्राप्त नहीं होने तक नहीं हो सकती। कुंदकुंद के आध्यात्मिक ग्रंथों के द्वितीय टीकाकार आचार्य श्री जयसेन स्वामी ने कहा है कि वीतराग अथवा निश्चय सम्यग्दर्शन वीतराग चारित्र का अविनाभावी है। अर्थात् वीतरागचारित्र के धारक मुनि महाराज को ही वीतराग (निश्चय) सम्यग्दर्शन होता है। आगे छहढालाकार ने व्यवहारसम्यक्त्व का, जो निश्चयसम्यक्त्व का कारण है, स्वरूप बताते हुए बताया है कि सात तत्त्वों के समीचीन स्वरूप की श्रद्धा व्यवहारसम्यग्दर्शन है। व्यवहारसम्यग्दर्शन के साथ अनंतानुबंधी कषाय के अनुदय के कारण होनेवाले स्थूल सदाचरण के रूप में सम्यक्त्वाचरण भी प्रकट होता है। अप्रत्याख्यानवरण एवं प्रत्याख्यानवरण कषायों के क्षयोपशम से क्रमशः पाँच पापों के एकदेश-त्यागरूप संयमासंयम एवं सम्पूर्ण पापों के सर्वथा त्यागरूप महाव्रत, गुप्ति, समिति आदि प्रकट होते हैं, जिन्हें व्यवहारसम्यक्चारित्र कहा जाता है। व्यवहार रत्नत्रय की चरमदशा में वीतराग अवस्था में, निश्चय रत्नत्रय प्रकट होता है जो शीघ्र मोक्ष को प्राप्त करा देता है।

सर्वार्थसिद्धिकार ने सम्यक्त्व के दो भेदों के बारे में लिखा है- "**तद् द्विविधं सरागवीतरागविषयभेदात्।**" "**प्रशमसंवेगानुकम्पास्तिक्याद्यभिव्यक्तिलक्षणं प्रथमम्। आत्मविशुद्धिमात्रमितरत्॥**" व्यवहारसम्यक्त्व को निश्चय का साधक बताते हुए द्रव्य संग्रह गाथा 41 की टीका में लिखा है- "**व्यवहारसम्यक्त्वेन निश्चयसम्यक्त्वं साध्यत इति साध्यसाधकभाव ज्ञापनार्थसमिति॥**" पंचास्तिकाय गाथा 107 की ता.वृ. टीका में लिखा है **इदं तु नवपदार्थविषयभूतं व्यवहारसम्यक्त्वं किं विशिष्टम्। शुद्धजीवास्तिकाय-रुचिरूपस्य निश्चयसम्यक्त्वस्य छद्मस्थावस्थात्मविषय-स्वसंवेदनज्ञानस्य परम्परया बीजम्॥**"

उक्त विवेचन से निम्न बिंदु सिद्ध होते है -

1. व्यवहार सम्यग्दर्शन साधन होने से पहले होता है और उसके द्वारा सिद्ध होने वाले साध्य के रूप में निश्चय सम्यग्दर्शन बाद में होता है।

2. साधन के बिना साध्य नहीं होता, अतः व्यवहारसम्यग्दर्शन के बिना निश्चयसम्यग्दर्शन नहीं होता है। निश्चय-सम्यग्दर्शन प्राप्त करने के लिए पहले व्यवहार सम्यग्दर्शन की साधना की जानी चाहिए।

3. व्यवहार सम्यग्दर्शन भी सम्यग्दर्शन ही का एक भेद है। "**सदृष्टिज्ञानवृत्तानि धर्मम्**" आ. समंतभद्र के उक्त वाक्य के अनुसार व्यवहार-सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्र भी धर्म हैं। इनको धर्म नहीं मानना मिथ्यात्व है।

मदनगंज-किशनगढ़ (राजस्थान)

- **जिस जीवन के लिए प्राणी महान् पाप करके धन उपार्जित किया करता है, वह जीवन शरदऋतु के मेघ के समान शीघ्र नष्ट हो जाता है।**
- **कदाचित् बालू में पानी और आकाशपुरी में महापुरुष भले ही प्राप्त हो जावें, परन्तु इस असार संसार में सुख कभी प्राप्त नहीं हो सकता।**

'वीरदेशना' से साभार

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कल्याण मन्दिर स्तोत्र : एक परिशीलन

प्राचार्य पं. निहालचन्द जैन

भक्ति और ज्ञान-दोनों का लक्ष्य है - 'प्रसुप्त चेतना का जागरण'। आत्मा की चैतन्य धारा, सांसारिक भँवर में, ऊर्ध्वारोहण के स्वभाव से च्युत हो, मैली बनी हुई है। चेतना की अधोगति है संसार की ओर अभिमुखता और ऊर्ध्वगति है मुक्तिसोपान की ओर बढ़ना। 'अर्हद्भक्ति', अधोगति को मिटाकर आत्मा की विशुद्धि को बढ़ाती है। स्तोत्रकाव्य, अर्हद्भक्ति के उत्कृष्ट नमूने हैं। भक्ति-परक स्तोत्र अनेक हैं। यहाँ प्रमुख 4-5 स्तोत्रों को भूमिका में समाहित कर रहा हूँ। आचार्य मानतुंग का भक्तामरस्तोत्र, श्री समन्तभद्र स्वामी का बृहत्स्वयम्भूस्तोत्र, कुमुदचन्द्राचार्य का कल्याणमन्दिर स्तोत्र, वादिराजसूरि का एकीभावस्तोत्र और धनञ्जय महाकवि का विषापहारस्तोत्र। इन स्तोत्रों के साथ कोई न कोई सृजन-कथा जुड़ी हुई है। चमत्कार या अतिशय का घटित होना स्तोत्र का नैसर्गिक प्रभाव कहें या उनमें समाहित/गुम्फित मन्त्रों की शब्द-शक्ति। शब्द-शक्ति की अभिव्यंजना से अनुस्यूत स्तोत्र तन्मयता और भाव-प्रवणता के अचूक उदाहरण हैं। उनकी ज्ञेयता में ही भक्ति का उन्मेष और उत्कर्ष है।

कल्याणमन्दिरस्तोत्र का रचनाकाल विक्रम सं. 625 माना गया है। अनुश्रुति के आधार पर आचार्य कुमुदचन्द्र पर कोई विपत्ति आई हुई थी। कहा जाता है कि उज्जयिनी में वादविवाद में इसके प्रभाव से एक अन्य देव की मूर्ति में श्री पार्श्वनाथ की प्रतिमा प्रकट हो गयी थी। इसमें भगवान् पार्श्वनाथ की स्तुति की गई है, अस्तु इसका नाम ''पार्श्वनाथ स्तोत्र'' भी है। इसकी अपूर्व महिमा है। इसका पाठ या जाप करने से समस्त विघ्न बाधायें दूर होती हैं और सुखशान्ति प्राप्त होती है। जिनशासन का प्रभाव या चमत्कार दिखाने के लिए प्रायः ऐसे भक्ति स्तोत्रों का उद्गम हुआ है। जैसे **स्वयम्भू स्तोत्र** - समन्तभद्र स्वामी को शिवपिण्डी का नमस्कार करने के लिए बाध्य किया गया और वह पिण्डी अचानक फटी और भगवान् चन्द्रप्रभु की प्रतिमा अनावरित हो गयी। आचार्य मानतुंग भक्तामर के पदों की रचनाकर, भक्ति में डूबते गये और 48 ताले अनायास खुलते गये। धनञ्जय कवि के पुत्र के विष का परिहार हुआ। इसी प्रकार भगवान् पार्श्वनाथ का जो संकटहरण-देव के रूप में लोकमानस में प्रतिष्ठित हैं, स्तवन करने से आचार्य कुमुदचन्द्र का उपसर्ग दूर हुआ। इस स्तोत्र की मान्यता दिगम्बर और श्वेताम्बर दोनों सम्प्रदायों में भक्तामर स्तोत्र की भांति है। जहाँ श्वेताम्बर इसे अपने गुरु सिद्धसेन दिवाकर की रचना मानते हैं, वहीं दिगम्बर, स्तोत्र में आये - ''**जननयनकुमुदचन्द्रप्रभास्वराः**'' से आचार्य कुमुदचन्द्र की मानते हैं।

यह दिगम्बर आचार्य प्रणीत रचना है, इसके दो ठोस प्रमाण अधोलिखित हैं - (1) स्तोत्र के 31 वें पद्य से लेकर 33 वें पद्य तक भगवान् पार्श्वनाथ पर दैत्य कमठ द्वारा किये गये उपसर्गों का वर्णन है, जो श्वेताम्बरपरम्परा के प्रतिकूल है, क्योंकि श्वेताम्बरपरम्परा में भगवान् पार्श्वनाथ के स्थान पर भगवान् महावीर को सोपसर्ग माना है, जबकि दिगम्बर-परम्परा में भगवान् पार्श्वनाथ को सोपसर्ग माना है, भगवान् महावीर को नहीं। (2) इसी प्रकार 19 वें पद्य से लेकर 26 वें पद्य तक भक्तामरस्तोत्र की भाँति आठ प्रातिहार्यों का वर्णन है, जो केवल दिगम्बर परम्परा में ही मान्य है। सिंहासन, भामण्डल, दुन्दुभि और छत्र प्रातिहार्यों का प्रतिपादन श्वेताम्बरसम्मत भक्तामरस्तोत्र (केवल 44 पद्य) में नहीं है।

संकटमोचन कल्याण मन्दिर स्तोत्र - भगवान् पार्श्वनाथ एक संकटमोचक लोकदेवता के रूप में प्रतिष्ठित हैं। इसका कारण भगवान् पार्श्वनाथ के विगत दस भवों की जीवन गाथा की वह भावदशा है, जिसमें उनका प्रत्येक भव मे आये उपसर्ग एवं कष्टों में समताभावी व. क्षमाशील बने रहना। प्रतिशोध की भावना भी उनके हृदय में नहीं आयी। बैरी, कमठ के जीव ने, जब वह शम्बर-देव की पर्याय में था और पार्श्वनाथ वन में तपस्या में लीन थे, अवधिज्ञान से अपने अतीत को याद किया और प्रतिशोध की अग्नि में जलने लगा। सात दिन तक भारी उपसर्ग किये। अन्त में धरणेन्द्र अपनी देवी पद्मावती के साथ प्रकट हुए और उन्होंने भगवान को अपने फणों पर उठाकर उन उपसर्गों से रक्षा का भाव किया। अस्तु नायक की स्तुति भी महाभय-विनाशक और कष्टनिवारक है। उदाहरणार्थ - पद्य क्र. 3 जलभय-निवारक, क्र. 4 असमय-निधन-निवारक, क्रं.11 जलाग्निभय-निवारक, क्र.12 अग्निभय-निवारक और क्र.16 गहन-वन-पर्वत-भय-निवारक है। वहीं पद्य 18 सर्पविष-विनाशक, क्र.19 नेत्ररोग-विनाशक, क्र.25 असाध्यरोग-शामक और क्र.27 वैरविरोध-विनाशक है।

प्रत्येक पद्य का एक विशेष मन्त्र है, जिसकी विधिवत्

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

साधना से अभीष्ट फल की प्राप्ति होती है। उदाहरण के लिए पद्य क्र.4 देखें -

मोहक्षयादनुभवन्नपि नाथ ! मर्त्यो,
नूनं गुणान्गणयितुं, न तव क्षमेत।
कल्पान्तवान्तपयसः प्रकटोऽपि यस्मान्,
मीयेत केन जलधेर्ननु रत्नराशिः॥ 4॥

उक्त पद्य का मंत्र है - "ॐ नमो भगवते ॐ ह्रीं श्रीं क्लीं अर्हं नमः स्वाहा।"

विधि - 9 वर्ष तक, वर्ष के लगातार 40 रविवार को 1000 बार मंत्र जपने से अकालमरण व महिलाओं का गर्भपात नहीं होता।

स्तोत्र के सृजन का इतिहास - आचार्य कुमुद्चन्द्र राजकीय कार्य से चित्तौड़गढ़ जा रहे थे। मार्ग में भगवान पार्श्वनाथ जी का एक जैन मन्दिर दिखाई दिया और वे दर्शनार्थ गये। उनकी दृष्टि एक स्तम्भ पर पड़ी, जो एक और खुलता भी था। उन्होंने लिखित गुप्त संकेतानुसार कुछ औषधियों के सहारे उसे खोला और उसमें रखे एक अलौकिक ग्रन्थ का प्रथम पृष्ठ पढ़ने लगे। जैसे ही उन्होंने पढ़ने के लिए दूसरा पृष्ठ खोलना चाहा, उन्हें आकाश वाणी सुनाई दी कि **"इसे तुम नहीं पढ़ सकते हो"** और वह स्तम्भकपाट पुनः बन्द हो गया। यही आगे चलकर चमत्कार सिद्धि में कारण बना।

आचार्य कुमुद्चन्द्र की आत्मशक्ति का प्रखर तेज, उज्जयिनी के नरेश विक्रमादित्य को अभिभूत कर गया और राजा ने आपको राजदरबार के ऐतिहासिक नवरत्नों में 'क्षपणक' नामक उज्ज्वल रत्न के रूप में अभिभूषित किया।

एक बार ओंकारेश्वर के महाकालेश्वर के विशाल प्राङ्गण में हजारों की संख्या में शैव और शाक्त बैठे हुए थे, जिन्हें अपने वैदिक यौगिक चमत्कारों पर बड़ा गर्व था। वे सभी इस क्षपणक में ऐसा कौन सा चमत्कार है, जिससे राजदरबार का रत्न बन बैठा, देखना चाहते थे। नरेश भी परीक्षाप्रधानी था। राजाज्ञा पाकर कुमुद्चन्द्र शिवपिण्डी को नमस्कार करने आगे बढ़े। वे ज्यों-ज्यों बढ़ रहे थे, चित्तौड़गढ़ का वह भव्य जिनालय, भगवान् पार्श्वनाथ की सौम्यमूर्ति और वही स्तम्भ में रखा ग्रन्थ देख रहे थे। कुछ ही क्षणों में वही स्तम्भ और ग्रन्थ का चमत्कारी पृष्ठ उस शिवमूर्ति के स्थान पर दिखाई देने लगा। एकाएक उनके मुँह से भक्ति के उन्मेष में यह श्लोक निकलने लगा -

आकर्णितोऽपि महितोऽपि निरीक्षतोऽपि,
नूनं न चेतसि मया विधृतोऽसि भक्त्या।
जातोऽस्मि तेन जनबान्धव ! दुःखपात्रं,
यस्मात् क्रियाः प्रतिफलन्ति न भावशून्याः॥ 38॥

इस अद्भुत श्लोक को सुनकर जनमानस मंत्रमुग्ध हो गया। समस्त जनमेदिनी उस अलौकिक पुरुष को निहार रही थी, जिसके प्रभाव से सम्पूर्ण परिवेश वीतरागी अध्यात्म छटा से परिपूर्ण बन गया था। विक्रमादित्य सहित उपस्थित जनता जैनधर्म की अनुयायिनी हो गई। उन्हीं विक्रमादित्य की प्रेरणा से कुमुद्चन्द्राचार्य ने भक्तिरस के इस चमत्कारी स्तोत्र की रचना की। कवि ने भगवान् पार्श्वनाथ की भक्ति में खोकर लोकोत्तर उपमाओं और कल्पनाओं द्वारा मानवकल्याण के लिए एक ऐसी सीढ़ी निर्मित कर दी, जिस पर से हमारी आत्मिक अपूर्णता, उस अनंत सम्पूर्णता को संस्पर्शित करने लगती है, जो आत्मविकास के लिए अपरिहार्य है। (कथानक - पं. कमल कुमार/प्रकाशक मोहनलाला शास्त्री/जबलपुर से साभार उद्धृत)

कल्याण मन्दिर स्तोत्र में भक्ति तत्त्व का उत्कर्ष - सामान्य जन संसार के दुःखों से परितप्त है। वह भगवान् पार्श्व प्रभु को परम-कारुणिक और इन्द्रियविजेता होने के कारण समर्थ्यवान् मानता है। अस्तु! भक्तजन अपने अज्ञान का नाश करने व दुःखों को दूर करने के लिए प्रार्थना करता है-

"भक्त्या नते मयि महेश दयां विधाय, दुखाङ्कुरोद्दलन-तत्परतां विधेहि।" (39) वीतराग की भक्ति से आत्मा पवित्र बनती है, पुण्य प्रकृतियों का उपार्जन होता है और पाप प्रकृतियों का ह्रास होता है। जिस प्रकार चन्दन के वन में मयूर के पहुँचते ही वृक्षों से लिपटे सर्प तत्काल अलग हो जाते हैं। भक्त के हृदय में आपके विराजमान होते ही संलिष्ट अष्ट कर्मों के बन्धन ढीले पड़ जाते हैं।

हृद्वर्तिनि त्वयि विभो ! शिथिलीभवन्ति,
जन्तोः क्षणेन निविडा अपि कर्मबन्धाः॥ 8॥

भक्ति से भव-तारण - जिस प्रकार मसक को तिरेन में 'उसमें' भरी वायु कारण है, वैसे ही भव समुद्र से भव्य जनों को तिरने में आपका वारम्बार चिन्तवन ही कारण है, अतः आप भवपयोधि तारक कहलाते हैं -

जन्मोदधिं लघु तरन्त्यतिलाघवेन,
चिन्त्यो न हन्त महतां यदि वा प्रभावः।

अष्ट प्रातिहार्य वर्णन में प्रयुक्त प्रतीक - कल्याण मन्दिर स्तोत्र के पद्य नं. 19 से 26 तक आठ प्रातिहार्यों का वर्णन है, जिनमें प्रयुक्त प्रतीक आत्मा के उन्नतशील बनाने की

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

भावाव्यक्ति है।

1. **अशोक वृक्ष** - भगवान् के धर्मोपदेश के समय मनुष्य की तो क्या, वनस्पति और वृक्ष भी शोक रहित - अशोक बन जाते हैं, जैसे सूर्योदय से कमल एवं पँवार आदि वनस्पतियां संकोचरूप निद्रा को छोड़कर विकसित हो जाती हैं।

2. **पुष्पवृष्टि** - देवों द्वारा की जाने वाली पुष्पों की वर्षा से पांखुरी ऊपर और उनके डंठल नीचे हो जाते हैं, प्रतीक हैं कि भव्य जनों के कर्मबन्धन नीचे हो जाते हैं।

3. **दिव्यध्वनि** - सुधा समान है, जिसे पीकर भव्य जन अजर अमर पद पा लेते हैं।

4. **चँवर** - ढुरते हुए चँवर नीचे से ऊपर को जाते हैं, जो सूचित करते हैं कि झुककर नमस्कार करने वाला चंवर के समान ऊपर यानी स्वर्ग / मोक्ष जाता है।

5. **सिंहासन** - स्वर्णनिर्मित व रत्नजटित सिंहासन पर विराजे पार्श्वप्रभु की दिव्यध्वनि ऐसी लगती है, जैसे सुमेरुपर्वत पर काले मेघ गर्जना कर रहे हों। मेघों को जैसे मयूर उत्सुकता से देखते हैं, ऐसे भव्य जीव प्रभु वाणी को लालायित हो सुनते हैं।

6. **भामण्डल** - इसकी प्रभा से अशोक वृक्ष के पत्तों की लालिमा लुप्त हो जाती है। इसी प्रकार सचेतन पुरुष भी आपके ध्यान से राग-लालिमा को नष्टकर वीतरागता को प्राप्त होते हैं।

7. **दुन्दुभि** - देवों द्वारा बजाये जाने वाले नगाड़े व घण्टा आदि के स्वर कह रहे हैं कि प्रमाद छोड़ पार्श्व प्रभु की सेवा में उद्यत हो जाओ।

8. **छत्रत्रय** - आपके अपूर्व तेजपुंज से निस्तेज हुआ चन्द्रमा, तीन छत्र का वेष धारणकर सेवा में उपस्थित है। छत्रों पर लगे मोती चन्द्रमा के परिकर तारागण रूप हैं।

आचार्य कुमुदचन्द्र कहते हैं कि पार्श्व प्रभु की यह स्तुति नीरस व शुष्क हृदय से न करें, क्योंकि बिना तन्मय हुए स्तुति करने का आनंद नहीं मिलेगा। भगवच्चरणों में बुद्धि को स्थिर करें तथा मन की चंचलता को रोककर प्रेम से छलकते हृदय द्वारा जब इसका गान करते हैं तो अंगप्रत्यंग रोमांचित हो जाता है। ऐसी दशा या भावस्थिति में आनंद मिलता है और आत्मा पवित्र बनती है। आचार्य कुमुदचन्द्र इस स्तोत्र का उपसंहार करते हुए कहते हैं कि मैंने इसे स्वयं की लोक-पूजा के लिए नहीं रचा, अपितु भक्ति में डूबकर रचा है, फिर भी कुछ भी भक्ति नहीं कर पायी। जो कुछ भी कर पाया हूँ उसका फल यही चाहता हूँ कि - **"तुम होहु भव भव स्वामि मेरे, मैं सदा सेवक रहूँ।"** वे कहते हैं कि जब तक मोक्ष प्राप्त न हो, तब तक आपकी भक्ति से वंचित न रहूँ-

धन्यास्त एव भुवनाधिप ! ये त्रिसन्ध्य-
माराधयन्ति विधिवद् विधुतान्यकृत्याः।
भक्त्योल्लसत्पुलक पक्ष्मलदेहदेशाः,
पादद्वयं तव विभो ! भुवि जन्मभाजः॥ 34॥

भक्ति के कारण जिनके शरीर का रोम-रोम उल्लसित व पुलकित है, वे धन्य हैं। आपके चरणकमलों की उपासना करनेवाला मिथ्यात्व-मोह का अंधकार विदीर्ण कर स्वयं आप जैसा आलोक पुरुष बन जाता है।

बीना (म. प्र.)

मोक्षमार्ग है, मोहमार्ग नहीं

गर्मी का समय था। विहार चल रहा था। एक महाराज जी (पद्मसागर जी) को अन्तराय हो गया। आचार्य गुरुदेव ने उन्हें उसी दिन उसी गाँव में रुकने को कहा। उन्होंने कहा- नहीं हम तो आपके साथ ही चलेंगे। दो, तीन बार कहने पर भी नहीं माने तो आचार्य श्री जी ने डाँटते हुए कहा- हम जैसा कहते हैं, वैसा करो। महाराज (पद्मसागर जी) मौन रहे, गुरुदेव के चरण छुये और रुकने की सहमति से सिर हिला दिया। उसी दिन संघ का विहार हो गया। गर्मी बहुत थी दूसरे दिन अगले गाँव में किसी भी मुनिराज से अच्छे से आहार नहीं लिये गये। ईर्यापथ भक्ति के बाद आचार्य श्री जी ने कहा- देखा महाराज मान नहीं रहे थे, उनकी तो यहाँ और हालत खराब हो जाती। शिष्य ने कहा- क्या करें आचार्य श्री आपको कोई छोड़ना नहीं चाहता।

आचार्य श्री ने कहा- ध्यान रखो यह मोक्षमार्ग है, मोह मार्ग नहीं। यह गुरुदेव की निःस्पृहवृत्ति एक अनोखा गुण है। वे हमेशा निरीहता के साथ जीवन व्यतीत करते हैं एवं सभी को निरीह बनने का उपदेश देते हैं।

मुनिश्री कुंथुसागर-संकलित 'संस्मरण' से साभार

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

चातुर्मास में धार्मिक शिक्षण-प्रशिक्षण

डॉ. ज्योति जैन

जनसामान्य के बीच धर्म संस्कृति के प्रचार-प्रसार में धार्मिक कक्षाओं, शिक्षण शिविरों, स्वाध्याय, पाठशालाओं, ग्रन्थों/पुराणों आदि की वाचना का बहुत ही महत्त्व है। आज बच्चों, युवाओं, महिलाओं आदि में धर्म की शिक्षा इन्हीं माध्यमों से मिल रही है। आचार्य समन्तभद्र जी महाराज का कथन आज के सन्दर्भ में बिल्कुल सटीक है कि ''न धर्मो धार्मिकैर्बिना''। सच भी है कि 'जब धर्मज्ञ ही नहीं रहेंगे तो धर्म का अस्तित्व ही खतरे में पड़ जायेगा'

वर्तमान जीवन शैली और बढ़ती व्यस्तता से धर्म और धार्मिक क्रियाओं के लिये समय निकालना सामान्यजनों के लिए असम्भव नहीं तो कठिन अवश्य ही होता जा रहा है। यही कारण है कि समाज का बहुसंख्यक वर्ग धार्मिक विमुखता की ओर बढ़ता जा रहा है। भौतिक सुख-सुविधाओं में लिप्त व्यक्ति भी जीवन में सुख सन्तुष्टि और शान्ति का अनुभव नहीं कर पा रहा है। तब आवश्यक है कि उसे उचित मार्गदर्शन मिले, वह दिशा मिले ताकि वह धर्म से जुड़े अपनी संस्कृति को पहचाने और अपने मानव जीवन को भी सार्थक करें।

आषाढ़ की अष्टाह्निका से कार्तिक तक का समय 'चातुर्मास समय' कहलाता है। जैन धर्म एवं संस्कृति में चातुर्मास का विशेष महत्त्व है। चातुर्मास में आचार्य संघ, मुनि संघ, आर्यिका संघ, त्यागीगण एवं अनेक विद्वान् एवं श्रावक वर्ग भी वर्षायोग धारण कर चार मास एक ही स्थान पर रहते हैं। इन चार महीनों में समाज में धार्मिक वातावरण बनता है और धर्म से जुड़े लोगों को चिन्तन, मनन एवं जीवन की दिशा मिलती है, धर्म सम्बन्धी संस्कृति, संस्कार की पृष्ठभूमि भी तैयार होती है। इससे अनेक लोगों के जीवन में परिवर्तन भी आता है। साधुवर्ग का यह समय स्वकल्याण का होता है। वे ज्ञान अर्जन, अभ्यास, संयम की आराधना, ध्यान, चिन्तन, मनन करते हैं। सामान्यजनों को भी साधु-सान्निध्य का भरपूर लाभ मिलता है। चातुर्मास में जहाँ एक ओर अष्टाह्निका, सोलहकारण, रत्नत्रय दशलक्षण, सुगंध दशमी, क्षमावाणी आदि पर्वों को साधु संघों के साथ मिलकर मनाने का अवसर मिलता है, वहीं विशेष धार्मिक कक्षायें, शास्त्रों की वाचना, पठन-पाठन, शंका-समाधान आदि का कार्यक्रम भी होता है।

धर्मप्रचार, धार्मिकसंस्कार एवं धर्मप्रभावना की दृष्टि से चातुर्मास का अपना ही महत्त्व है। जहाँ-जहाँ चातुर्मास स्थापित होते हैं, लोगों का उत्साह देखते ही बनता है। आज जबकि रात्रिकालीन पाठशालायें कम होती जा रही हैं और लौकिक शिक्षा के बढ़ते दबाव से बच्चे धर्म-शिक्षा से दूर होते जा रहे हैं, तब बच्चों में धार्मिक संस्कार के लिये चातुर्मास का समय बड़ा महत्त्वपूर्ण समय है। और बच्चे ही क्यों युवा, महिलायें, वृद्ध जन सभी इस समय का सदुपयोग कर सकते हैं। चार महीने के शिक्षण-प्रशिक्षण में जैन दर्शन के मूलभूत सिद्धान्तों का ज्ञान तो होता ही है एवं श्रावकों के क्या कर्त्तव्य और दायित्व हैं, इसका भी बोध होता है। साधुवर्ग के सम्पर्क में आने से जहाँ उनकी सम्पूर्ण चर्या को निकट से देखने का अवसर मिलता है, वहीं संयम की प्रेरणा भी मिलती है। लगता है कि संयम, त्याग, वैराग्य, तप आदि पुस्तकों में ही नहीं पढ़े जाते, व्यवहारिक जीवन में भी ये विद्यमान हैं। इन सबको कैसे जीवन में उतारा जा सकता है, यह सब भी साधुओं के माध्यम से देखने को मिलता है। सच है, उनकी चर्या देखते हुए जीवन में न जाने कब परिवर्तन आ जाये ? कब जीवन को दिशा मिल जाये ?

चातुर्मास का समय धार्मिक संस्कारों को सिखाने का महत्त्वपूर्ण समय है। बच्चों को संस्कारित करते समय छोटी-छोटी बातों की भी जानकारी अवश्य दें। जैसे मन्दिर में बाहर जूता-चप्पल उतारने, हाथ पैर धोने से लेकर दर्शन-पूजा विधि, स्वाध्याय, जाप, गंधोदक लेने की विधि आदि। धार्मिक शिष्टाचार एवं अनुशासन के पाठ पर बल दें। बच्चों को सरल सुबोध और उनके अनुरूप पुस्तकों द्वारा यदि हम धार्मिक ज्ञान करायें तो उन्हें ग्रहण करने में सरलता होगी। धर्म एवं संस्कृति से जुड़े स्टेज कार्यक्रमों को भी करायें (जिनमें टी.वी. प्रोग्रामों की छाप न हो)।

आजकल जैन पत्र-पत्रिकायें बड़ी संख्या में छप रही हैं, पर देखने में आया कि इनका उपयोग एक वर्ग तक ही सीमित है। जनसामान्य की इन पत्र-पत्रिकाओं में न अभिरुचि है, न चेतना। मन्दिरों में इस तरह की व्यवस्था की जाये, जैसे रैक आदि की, और उसमें पत्र-पत्रिकायें रखी जायें ताकि सामान्य जन पत्र-पत्रिकायें देख सकें, पढ़ सकें और उन्हें समाज की वर्तमान स्थिति तथा समाज में होने वाली

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

गतिविधियों आदि सभी की जानकारी मिल सके। साहित्यिक अभिरुचि के लोग आगे आयें और इस तरह के कार्य को अवश्य करायें। समाज के विभिन्न संगठन (बाल,युवा,महिला आदि) जो सक्रिय रहते हैं, उनका भरपूर सहयोग धार्मिक गतिविधियों में लें। समाज के विद्वानों का भी यथासमय सहयोग एवं मार्गदर्शन लेते रहें। जो लोग आर्थिक दृष्टि से संपन्न हैं, वे भी आगे आयें और विभिन्न कार्यक्रमों, प्रकाशनों आदि में अपना भरपूर योगदान देवें। महिलाओं के लिए चातुर्मास का समय एक उत्कृष्ट समय है। वे अपने कार्यों से एक उचित भूमिका निभा सकती हैं। चौके आदि की महत्त्वपूर्ण जिम्मेदारी का वहन महिलावर्ग ही करता है। धार्मिक शिक्षा ग्रहण करने का उचित अवसर चातुर्मास में ही मिलता है। आज समय की माँग है कि यदि महिला संस्कारित हो जाये, तो दो परिवार संस्कारित हो जाते हैं।

आज ऐसे लोगों की भी कमी नहीं है, जो धार्मिकता के विपरीत आचरण करते हैं। जिनकी कथनी-करनी में अन्तर होता है। ऐसे कार्य करनेवालों के प्रति विरोध अवश्य दर्ज होना चाहिए। ताकि धर्म के नाम पर कुछ भी करने वालों को सबक मिले।

तो आइये, चातुर्मास में धर्म की प्रभावना कर सदाचार व संयम की रोशनी फैला दें, जिसकी आज परम आवश्यकता है। एक ऐसा सुखद धार्मिक वातावरण बनायें ताकि धर्म-संस्कृति के प्रति सभी की श्रद्धा बढ़े।

पोस्ट बाक्स नं. 20
खतौली, 251201 (**उ.प्र.**)

'अहिंसा सिल्क' को पेटेंट मिला

हैदराबाद, 12 जुलाई। सिल्क की चमक-दमक वाली साड़ी पसंद करने वालों को एक यह तथ्य विचलित कर सकता है कि एक स्टेंडर्ड साइज की 5.5 मीटर की सिल्क की साड़ी बनाने में 50 हजार से ज्यादा रेशम के कीड़े मारे जाते हैं। उल्लेखनीय है सिल्क बनाने की पारंपरिक पद्धति में रेशम के कीड़ों को केकूनों सहित उबलते पानी में डाला जाता है।

क्या यह विचार डराने वाला नहीं है कि एक सिल्क की साड़ी चुनने का मतलब 50 हजार जीवों की खालें पहनना है? यही प्रश्न कई वर्षों से आंध्रप्रदेश निवासी, के. राजैया के मस्तिष्क में बार-बार कौंधा करता था। इसी प्रश्न ने उन्हें सिल्क बनाने की नई पद्धति विकसित करने के लिए प्रेरित किया ताकि बिना क्रूरता के सिल्क बनाया जा सके और करोड़ों जीवों की जानें बचाई जा सकें।

राजैया द्वारा विकसित सिल्क उत्पादन की 'अहिं-सात्मक' पद्धति को हाल ही में पेटेंट प्रदान किया गया है। पेटेंट मिलने के बाद राजैया ने बताया कि उन्होंने वर्ष 2002 में इस पद्धति के पेटेंट के लिए आवेदन किया था। वह उन्हें पिछले माह प्राप्त हुआ है। अब वे 'अहिंसा सिल्क' का उत्पादन कर सकेंगे। उल्लेखनीय है राजैया आंध्रप्रदेश हेण्डलूम वीवर्स को-ऑपरेटिव सोसायटी (एप्को) के वरिष्ठ तकनीकी सहायक के पद पर कार्यरत है। राजैया के अनुसार पारंपरिक पद्धति में सिल्क को रेशम के कीड़ों द्वारा बनाए गए केकूनों से निकाला जाता है। इस पद्धति में केकूनों को उबलते पानी में डाला जाता है जब रेशम के कीड़े इन केकूनों में निष्क्रिय अवस्था में पड़े होते हैं। इस प्रक्रिया के बाद केकूनों से सिल्क के रेशे काते जाते हैं। इसके विपरीत 'अहिंसा' पद्धति से सिल्क के उत्पादन किए जाने में दूसरी प्रक्रिया अपनाई जाती है जो पर्यावरण के अनुकूल होने के साथ ही क्रूरता से भी मुक्त है।

इस प्रक्रिया में केकूनों से सिल्क निकाले जाने से पहले रेशम के कीड़ों को केकूनों से बच निकल जाने दिया जाता है। इस पद्धति में प्राप्त उत्पादन की मात्रा पारंपरिक पद्धति के उत्पादन के मुकाबले छह गुना कम होती है क्योंकि रेशम का कीड़ा जब केकून से मुक्त होता है तब सिल्क के धागे की निरंतरता टूट जाती है।

साभार - 'दैनिक भास्कर', भोपाल
दिनांक 13 जुलाई 2006 से साभार

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

विधान अनुष्ठान हो तो ऐसा, जैसा अहमदाबाद में हुआ

के. सी. जैन एडवोकेट

अभी अषाढ़ अष्टाह्निका में 4 जुलाई से 12 जुलाई 2006 तक अनुष्ठानविशेषज्ञ, प्रवचनप्रवीण विद्वान्, चोहत्तर वर्षीय पं. बसन्त कुमार जी शास्त्री शिवाड़ (राज.) के तत्त्वावधान में अहमदाबाद निवासी श्री भागचन्द जी जितेन्द्र कुमार जी जैन सरावगी के द्वारा श्री सिद्धचक्र विधान सम्पन्न हुआ।

सिद्धचक्र विधान मैंने सपरिवार कई बार किए हैं। लेकिन ऐसा संयमित अनुशासनात्मक सफल विधान आज तक नहीं किया। मेरे परिवार में सभी शिक्षित, विशिष्ट बुद्धिजीवी हैं। वे इतने संयम में, अनुशासन में आज तक कभी नहीं रहे।

विधान में सम्मिलित होने से पहले मैंने शास्त्री जी से निवेदन किया ''पण्डित जी साहब मैं, मेरी पत्नी, मेरा बेटा, उसकी पत्नी और दोनों बेटियाँ भी विधान में सम्मिलित होना चाहते हैं। किन्तु हम पहले ही आपसे कह रहे हैं, कि 1. हमसे सुबह-सुबह चाय पिये बिना नहीं रहा जाता। 2. भूखे पेट तीन-चार घण्टे बैठा नहीं जायेगा, इसलिए विधान भोजनोपरान्त दोपहर में किया जाय। 3. मुझे एक-दो घन्टे बाद लघुशंका के लिए जाना होता है। अतः इसकी मुझे छूट देंगे। 4. विधान के बीच में इन्टरवल के रूप में विश्राम के लिए नृत्य आदि से मनोरंजन कराना होगा। यदि ये सब बाते हों, तो विधान में बैठ सकते हैं।

मुस्कराते हुए पण्डित जी साहब मेरी सभी बाते सुनते रहे। और लोग भी मेरी बातों का समर्थन करते रहे। मेरे बोल लेने के बाद शास्त्री जी ने कहना शुरू किया - ''देखिए वकील साहब। न तो मैं आपसे परिचित हूँ और न आप मुझसे। विधान में सम्मिलित होने से पहले विधान क्यों किया जाता है, यह सुन लें। विधान अशुभोपयोग से बचने और शुभोपयोग में रहकर शुद्धोपयोग तक पहुँचने के लिए तथा कर्मों की निर्जरा के लिए किया जाता है। विधान के समय सांसारिक विषयवासना, भौतिकी आडम्बरों से हटकर अपने आपको संयमित करना होता है। **विधान में अष्टद्रव्यों (सामग्री) का इतना महत्त्व नहीं, जितना भावों की निर्मलता और सतत् उपयोग का बने रहना है।**

विधान लोक-दिखावे के लिए नहीं किया जाता, ख्यातिलाभ के लिए भी नहीं, अहंकारों के जनक उपहारों के लिए भी नहीं। बल्कि विधान तो आत्म साधना के लिए होता है। **मैना सुन्दरी ने कितने चावल बादाम चढ़ाए, कितने ढोल धमाका किया, कितने पोस्टर छपाये, कितने नृत्य गान किए?** भैया वकील साहब, मैना ने तो भावविभोर होकर सिद्धों के गुणों में रचपचकर विधान किया था। वह तो अपने आपको भी भूल बैठी तो भावनाओं की सुदृढ़ लहरों में। उसने सात सौ कोढ़ियों के कोढ़ को भी मिटा दिया।

अब मैं आपसे निवेदन करूँ, वकील साहब कि कल से विधान में निम्न नियम चलेंगे। यदि आप सहमत हों तो विधान में सपरिवार अवश्य सम्मिलित हो जाइए। यह गारन्टी मेरी है कि आपको, आपके परिवार को किसी भी प्रकार की परेशानी, व्याकुलता नहीं होगी, बल्कि आपको समय व्यतीत हुआ नहीं लगेगा। अब सुन लीजिए विधान के नियम -

1. विधान सुबह 7 बजे शान्तिधारा, नित्य नियम की पूजा के साथ प्रारंभ हो जायेगा।

2. विधान प्रतिदिन 11 बजे तक समाप्त हो जायेगा।

3. विधान में सम्मिलित भक्त सुबह चाय नाश्ता नहीं करके आयेंगे। चाय आदि पीनेवाले सम्मिलित नहीं किए जायेंगे।

4. भोजन शुद्ध सादा (गरिष्ठ नहीं) एक ही समय लेना होगा। शाम को सूर्यास्त से एक घन्टे पूर्व दूध, फल ले सकेंगे। अन्न की कोई चीज नहीं।

5. पानी गर्म ही पियेंगे। मौन से भोजन करेंगे।

6. गद्दे, पलंग आदि का उपयोग सोने, बैठने आदि में नहीं होगा।

7. विधान के समय सबके हाथ में विधान की पुस्तकें रहेंगी। क्रमशः सब बोलेंगे। जो समझ में नहीं आए, नोट कर लें, बाद में रोजाना 3 बजे से 4 बजे शंका-समाधान में बता दिया जायेगा।

8. **नृत्य-भजन विधान प्रारंभ होने से पहले** 15 **मिनिट के लिए हो सकते हैं। विधान के बीच में नहीं।**

9. शाम को सामूहिक आरती, फिर भजन संगीत और पश्चात् शास्त्र प्रवचन, प्रश्न मंच चलेगा।

10. इस तरह सुबह 7 बजे से रात्रि सवा नौ बजे तक कार्य सुचारु और अनुशासनात्मक रूप से चलता रहेगा।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सभी कार्य यथा समय ही होंगे। एक मिनट का भी विलम्ब नहीं होगा। जो लेट आयेगा उसे सम्मिलित नहीं किया जायेगा।

11. मन्दिर में घरेलू, व्यवसायिक आदि कोई चर्चा नहीं होगी।

तो मैं सभी से निवेदन कर रहा हूँ कि जिसे ये नियम स्वीकार्य हों, वही सम्मिलित हो। वकील साहब! जब आपका उपयोग विधान में रचपच जायेगा, तो लघुशंका की शिकायत का मौका ही नहीं मिलेगा।

इतने लम्बे चौड़े प्रावधान सुनकर एक बार तो हमारे परिवार का मन हिचकिचाया, किन्तु सभी नियम कठोर होते हुए भी अच्छे लगे। हमने स्वीकार कर ही लिए और विधान में सम्मिलित हो गए।

आठ दिन कैसे व्यतीत हो गए, पता ही नहीं लगा। कार्यक्रम में इस तरह बँध गए कि चाय नाश्ता सब भूल गए, और संयमित जीवन सादगी से सन्त की तरह चलता रहा। कहना पड़ेगा कि विधान में आनन्द आ गया। हमने अधिकतर विधान भोजन के बाद ही किए हैं। लेकिन जो आनन्द भूखे पेट विधान करने में आया, वह आनन्द पेट भरकर विधान करने में कहाँ ?

मुनिराजों का सान्निध्य भी इस विधान में मिला। मुनिराज भी इस अनुशासनात्मक विधान की सराहना किए बिना नहीं रह सके।

सच भी है, **जहाँ वीतरागी सिद्ध भगवान् के गुणानुवाद किये जा रहे हों, वहाँ राग भरे नृत्य-गान-मनोरंजन हों, वे भी क्यों ?**

श्री शास्त्री जी सचमुच अनुभवी और सिद्धान्त के पारगामी हैं। सरलस्वभावी और निर्लोभी हैं। मैंने, मेरे परिवार ने ऐसे सरल सादगी से भरे पण्डित जी पहले नहीं देखे। 9 दिन तक पण्डित जी ने न घी खाया और न मीठा और न मेवा, फल आदि। इतनी उम्र और इतना बोलना, सचमुच आश्चर्य हुआ। प्रवचनशैली हृदय छू लेने वाली रही। सच, विधान अनुष्ठान हो, तो ऐसा जैसा अहमदाबाद में हुआ।

गाँधी नगर, गुजरात (अहमदाबाद)

नई दिल्ली-हावड़ा राजधानी एक्सप्रेस के पार्श्वनाथ (श्री सम्मेदशिखर) पर ठहरने की सुविधा

श्री भारतवर्षीय दिगम्बर जैन महासभा एवं दक्षिण भारत जैन सभा के संयुक्त प्रतिनिधिमण्डल, महासभाध्यक्ष श्री निर्मलकुमार जैन सेठी एवं दक्षिण भारत जैन सभा चैयरमेन श्री जितेन्द्र कुमार के प्रयत्न से 01.08.2006 से 2301 हावड़ा-नई दिल्ली राजधानी एक्सप्रेस एवं 2302 नई दिल्ली-हावड़ा राजधानी एक्सप्रेस का स्टॉप पार्श्वनाथ स्टेशन पर कर दिया गया है। कोलकाता से सांय 05:23 पर चलकर 08:23 पर राजधानी एक्सप्रेस पार्श्वनाथ पहुंचती है। दिल्ली से सायं 05:00 बजे चलकर अगले प्रातः 06:00 बजे पार्श्वनाथ पहुंचती है। प्रारम्भ में यह स्टॉप 6 महीने के लिए अनुमोदित किया गया है। रेवेन्यू एवं यात्रियों की संख्या देखकर आगे निर्णय लिया जायेगा।

डॉ. विमल जैन
(609, भण्डारी हाऊस, 91, नेहरू प्लेस, नई दिल्ली - 110 019)

एलोरा गुरुकुल में गुणवंत विद्यार्थी सत्कार समारोह 2006 सम्पन्न

प.पू. समन्तभद्र महाराज श्री के पावन स्मरणार्थ प्रतिवर्ष की तरह दि. 18 अगस्त को पार्श्वनाथ ब्रम्हचार्याश्रम गुरुकुल में गुणवंत विद्यार्थी सत्कार समारोह शुक्रवार दि. 18 अगस्त 2006 को सम्पन्न हुआ। इस अवसर पर अध्यक्ष के रूप में अखिल भारतीय सैतवाल महासंघ के अध्यक्ष श्री कैलासजी रणदिवे, मुंबई थे।

गुलाबचंद बोरालकर
एलोरा (महाराष्ट्र)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

दिगंबर जैन मुनि के संबंध में मार्कोपोलो के विचार

सुरेश जैन, आई.ए.एस.

वाशिंगटन, डी.सी., यू.एस.ए. से प्रकाशित अंतर्राष्ट्रीय स्तर की महत्त्वपूर्ण पत्रिका **नेशनल ज्योग्रेफिक** खण्ड 200 क्रमांक - 1 जुलाई 2001 के अंक में लेखक श्री माइक एडवर्ड, सहायक संपादक एवं छायाकार की माईकेल यमशिता ने Marco Polo Journey Home, Part-III के नाम से अपना आलेख प्रकाशित किया है। इस आलेख में उन्होंने पृष्ठ 44-45 पर दिगंबर जैन मुनि का चित्र प्रकाशित करते हुए दिगंबर जैन मुनि के संबंध में 700 से अधिक वर्ष पूर्व लिखित मार्कोपोलो के निम्नांकित विचार उद्घृत किए है :-

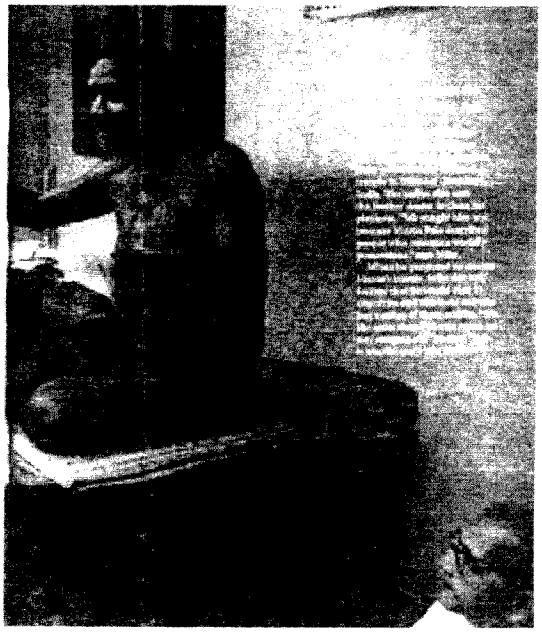

"We go naked because we wish nothing of this world." Thus Marco quotes a holy man similar to this sadhu in Bombay, who has not worn clothes in 16 years. He owns only a bowl and a feather duster. "It is a great wonder how they do not die," Marco wrote.

Blessed Moment

Close encounter in the foot steps of Marco Polo.

Photographer Michael Yamashita received a blessing with no disguise from a 76 years old sadhu at a temple in Mumbai (Bombay), India. The sadhu also uses the feather duster to clean his platform. "We sought him out because Marco Polo described people who renounce wordly possessions," says mike.

मार्को पोलो ने सन् 1291 में भारत की यात्रा की थी। उसने अपनी विश्वप्रसिद्ध ऐतिहासिक पुस्तक The Description of the World में दिगंबर जैन मुनि के संबंध में उपरिलिखित विचार अंकित किए हैं। माइक एडवर्ड और माइकेल यमशिता ने 700 वर्षों के पश्चात् मार्कोपोलो द्वारा स्थापित मार्ग पर पुनः चलकर मार्कोपालों द्वारा उल्लेखित 76 वर्षीय दिगंबर जैन साधु के मुम्बई के जैन मंदिर में दर्शन किए और उनका आशीर्वाद प्राप्त किया। मार्कोपोलो ने ऐसे व्यक्तियों का अपनी पुस्तक में वर्णन किया है, जिन्होंने संसार को त्याग दिया। अतः माइक एडवर्ड और माइकेल यमशिता ने ऐसे साधु की खोज की।

अमेरिका प्रवासी श्री यशवंत मलैया, दमोहवालों ने इस संदर्भ की जानकारी ई-मेल से हमें प्रेषित की है। हम उनके प्रति अनुगृहीत हैं। हमने इण्डियन इंस्टीट्यूट ऑफ फारेस्ट मैनेजमेन्ट, भोपाल के पुस्तकालय से संबंधित अंक प्राप्त कर इस आलेख का अध्ययन किया और यह महत्त्वपूर्ण एवं ऐतिहासिक जानकारी सभी शोधार्थियों और विद्वानों की जानकारी हेतु प्रसारित की जा रही है। 700 वर्ष पूर्व तत्कालीन जैन मुनि द्वारा मार्कोपोलो को दिया गया यह कथन कि "**हम नग्न हो जाते हैं, क्योंकि हम इस विश्व से कुछ नहीं चाहते हैं**" जैनधर्म और संस्कृति में वर्णित मुनिधर्म का सहज और सरल शब्दों में निष्कर्ष प्रस्तुत करता है। दूसरी ओर मार्कोपोलो का कथन कि "**यह बड़ा आश्चर्य है कि मृत्यु से वे कैसे बच पाते है**" दिगंबर जैन मुनि की कठिन तपश्चर्या का सार प्रस्तुत करता है।

यहाँ यह उल्लेखनीय है कि इस पत्रिका में प्रकाशित वर्तमान जैन मुनि के चित्र के ऊपर श्री भारतवर्षीय दिगंबर जैन (धर्म संरक्षिणी) महासभा की विज्ञप्ति प्रदर्शित है। इस विज्ञप्ति में महासभा, जैन गजट, जैन महिलादर्श और जैन बालादर्श के सदस्य बनने के लिए प्रेरित किया गया है। दिगंबर जैन मुनि के इस चित्र के माध्यम से यह विज्ञप्ति भी सम्पूर्ण अंतर्राष्ट्रीय जगत् में प्रचारित और प्रसारित हो रही है। आध्यात्मिक जगत से जुड़े हुए जानकार व्यक्ति उन जैन

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मुनि का परिचय, जिनका यह छायाचित्र है, मुझ तक भेज सकें, तो कृपा होगी।

इसी आलेख के प्रथम एवं द्वितीय भाग क्रमशः "The Adventures of Marco Polo" "Marco Polo in China" के नाम से क्रमशः इसी पत्रिका के मई एवं जून, 2001 के अंकों मे प्रकाशित किए गए है।

नेशनल ज्योग्रेफिक की बेबसाईट www.national geographic.com है। यह पत्रिका निम्नांकित पते से प्राप्त हो सकती है -

National Geographic Society,
P.O.Box No. 60399
Tsat Tsz Mui Post Office,
Hong Kong

30, निशात कालोनी,
भोपाल, म.प्र. 362 003
दूरभाष 0755 2555533

और बीमारी नहीं मिटी

पं. बसन्त कुमार जैन, शास्त्री

चार मरीज एक डॉक्टर के पास गये। ज्यों ही डॉक्टर के कक्ष में पहुँचे, डॉक्टर ने उन सबसे आत्मीयता के साथ बातें की, उन्हें तुरन्त स्वस्थ हो जाने का आश्वासन मीठे-मीठे शब्दों से दिया और प्रत्येक को अलग-अलग दवाएँ देकर समय पर खाने की प्रक्रिया बता दी और कहा कि एक माह पश्चात् आकर पुनः बीमारी की जाँच करा लेना। चारों प्रसन्न मन से अपने अपने घर चले गये।

एक माह बाद वे चारों पुनः जाँच कराने आये। डॉक्टर ने उनको देखा तो चकित रह गया। डॉक्टर बोला - तुम तो पहले से भी ज्यादा बीमार हो गये---ऐसा क्यों हुआ ? डॉक्टर ने प्रत्येक से पूछा - आपने दवा किस प्रकार ली ? पहला मरीज कहने लगा - डॉक्टर साहब! मैं तो आपसे उस दिन ऐसा प्रभावित हुआ कि रोजाना माला हाथ में लेकर - **"ॐ डॉक्टराय नमः"** की ग्यारह ग्यारह मालाएँ फेरने लगा और इस प्रकार एक माह पूरा हो गया। डॉक्टर ने पूछा-तो उस दवा का क्या हुआ ? मरीज ने उत्तर दिया-डॉक्टर साहब। दवा लेने का तो समय ही नहीं मिला।

डॉक्टर के द्वारा दूसरे मरीज से दवा न लेने का कारण पूछा गया तो उसने विनम्र होकर उत्तर दिया - डॉक्टर साहब! आप धन्य है, आप जैसा व्यवहारिक प्रभावक डॉक्टर मैंने कभी देखा ही नहीं था। आपको देखा तो आपके बारे में आपके गुणों से भरी पुस्तकें छपवाईं, उनको वितरित किया और इस प्रकार एक महिना पूरा हो गया। सच मानिये डॉक्टर साहब ! दवा लेने का तो समय ही नहीं मिला।

डॉक्टर के द्वारा तीसरे और चौथे मरीज से भी जब दवा न लेने का कारण पूछा तो एक ने कहा - डॉक्टर साहब! घर जाकर आपके गुणों का प्रचार करने में लगा रहा। दूसरे ने कहा - मैं बड़े-बड़े पोस्टर छपवाकर आपकी प्रशंसा के प्रचार में मीटिंगें करता रहा और दवा लेने का समय ही नहीं मिला।

डॉक्टर साहब गम्भीर हो गये और बोले- भले आदमियो! बीमारी मिटाने के लिये दवा का भली प्रकार प्रयोग किया जाता है, उसे खाया जाता है। मेरा प्रचार, मेरी प्रशंसा, मेरी पुस्तकें छपवाने से बीमारी नहीं जाने वाली। चारों अपनी मूर्खता पर रोने लगे।

कहीं ऐसी ही मूर्खता हम तो नहीं कर रहे ? हमें सांसारिक काम, क्रोध, लोभ, मोह और मायाचारी की बीमारी लगी है और हम भी समय पाकर, हमारा सही इलाज करने वाले डॉक्टर - महान सन्तजनों के पास जाते हैं और उनका उपदेश, प्रवचन सुनकर वे वचनामृत आचरण में लाभ के बजाय - केवल प्रसार-प्रचार तक ही सीमित रख देते है। तब बताइये हमारी भी यह सांसारिक भौतिकी बीमारियाँ मिटेंगीं कैसे ? प्रवचन सुनते-सुनते, उपदेश सुनते-सुनते किन्हीं भक्तों की तो उम्र साठ-सत्तर वर्ष तक की भी हो गई और बीमारी मिटी ही नहीं। सन्तजनों के प्रवचनों के लिये आकर्षक पाण्डाल भी सजाये, ध्वनि प्रसारक यंत्र भी अनेक लगाये, जय जयकारे भी बहुत किये, पोस्टर ओर पुस्तकें, कैसेट, सी.डी. भी बहुत बनवाईं, किन्तु बीमारी मिटी ही नहीं। लोभ, लालच, काम-वासनाओं की लिप्सा, अनैतिक व्यवहार, आपसी मनमुटाव, अधिकारों का अभिमान ये सारी बीमारियाँ घर कर गईं और बढ़ती ही जा रही हैं। शायद पर्यूषण पर्व के उपासना भरे वातावरण, संयमाचरण और सन्तजनों के सान्निध्य से मिट सकें। इसी का इन्तजार है।

शिवाड़ (राज.)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

क्षमा मनुष्य का सर्वोत्तम गुण

सुशीला पाटनी

मैंने पढ़ा, देखा, अनुभव किया प्रत्येक धर्म में क्षमाधर्म को महत्त्व दिया गया है। क्षमा को उच्च स्थान दिया गया है। जैनधर्म में क्षमा को वीरों का आभूषण कहा है - 'क्षमा वीरस्य भूषणम्'

हम सब पयुर्षण पर्व दस दिन बड़े उत्साहपूर्वक मनाते हैं, पता भी नहीं चलता समय कितना तेजी से बीत जाता है। यहाँ दस दिन बीत गये। बीते हुए स्वर्णिम क्षण पुनः लौट कर नहीं आते। आचार्य कहते हैं कि जो जो रात्रियाँ बीत रही हैं, वे लौटकर वापस नहीं आतीं, जो रात्रि धर्म साधना में व्यतीत होती है, वह सफल हो जाती है।

पर्युषण पर्व सब पर्वों में महान् पर्व है। इस पवित्र धार्मिक पर्व के दस दिनों में जैन बन्धु क्षमा, मार्दव, आर्जव, शौच, सत्य, संयम, तप, त्याग, आकिंचन्य और ब्रह्मचर्य इन दस धर्मों का पठन, श्रवण, मनन और पालन करते हैं। जैन बन्धु इस पर्व का समापन आपस में क्षमा भावना और क्षमादान द्वारा करते हैं। क्षमा भावना करते समय यह विचार आना चाहिये कि हमारे अन्दर कितनी नम्रता-सरलता, विनय और सहिष्णुता का समावेश हुआ है। हम अपने हृदय से कषायों का कूड़ा-कचरा बाहर निकाल कर फेंक दें। हृदय को स्वच्छ-निर्मल बना लें, ताकि क्षमावाणी पर्व मनाना सार्थक हो। हम सब देखते है कि स्वयं जलकर भी सूरज जग को प्रकाश देता है। काँटों में घिर कर भी गुलाब सदा सुवास देता है। पर गलती करना तो मानव का स्वभाव है, मगर जो पर की गलतियों को क्षमा करे, वही महान् होता है।

क्षमापर्व का उल्लेख सभी धर्मों में मिलता है। महात्मा बुद्ध ने अपने शिष्यों को संदेश दिया था कि हे शिष्यो, पृथ्वी की तरह क्षमाशील बनो। जैसे पृथ्वी पर कोई प्रहार करे, पीटे, मल-मूत्र फेंके, तब भी वह क्रोध नहीं करती है, सभी को क्षमा कर देती है, उसी तरह तुम भी क्षमावान् बनो।

ईसा मसीह ने भी क्षमा पर बल दिया है। अपने शिष्यों से कहा है कि कोई तुम्हारे गाल पर तमाचा मारे, तो तुम दूसरा गाल सामने कर दो। वैदिक और सनातन धर्म ने भी क्षमा को मानव जीवन का आवश्यक गुण माना है। हिन्दू बन्धुओं का होली पर्व के दिन मिलन और मुसलमानों का ईद मिलन एक प्रकार से क्षमापर्व का ही रूपान्तर है, क्योंकि इन उत्सवों पर लोग एक दूसरे से क्षमापना करते हैं। आत्मा की शांति एवं उज्ज्वलता के लिए सबसे महत्त्वपूर्ण बात है कषायों से निवृत्ति होना। कषायों का उपशम किए बिना आत्मा शांति का अनुभव नहीं कर सकती है। एक बार क्षमावाणी पर्व पर श्री जवाहरलाल नेहरू ने कहा था कि बिना क्षमा के जीवन रेगिस्तान है, यह मैंने प्रत्यक्ष जीवन में अनुभव किया है। वास्तव में क्षमा से ही जीवन शांत और आनन्दमय हो सकता है, जीवन नंदनवन बन सकता है। क्षमा लेना और क्षमा देना दोनों ही मनुष्य की महानता और उच्चता के द्योतक हैं। हम सब जानते हैं, देखते भी हैं कि जो पत्थर, हथौड़े की चोटें खा सकता है, छैनी से तराशे जाने पर भी बिखरता नहीं, वही पत्थर भगवान् का रूप धारण कर सकता है और लाखों-करोड़ों मनुष्यों के सिर अपने चरणों में झुकवा सकता है। क्षमा से, सहिष्णुता से यही गुण जीवन में आता है। क्षमा से जीवन निखरता है। इसलिये क्षमा मनुष्य का सर्वोत्तम गुण है।

आर. के. हाऊस
मदनगंज-किशनगढ़ (राज.)

बेटी को विद्या

यह बात उस समय की है जब अतिशय क्षेत्र कोनी जी में धवला पुस्तक 12 की वाचना चल रही थी। प्रसंगवशात् आचार्य गुरुदेव से पूछा- आचार्यश्री! भगवान् आदिनाथ ने शब्द और अंक विद्या, ब्राह्मी, सुन्दरी दोनों कन्याओं को ही क्यों सिखलायी? पुत्र भरत और बाहुवली जी को क्यों नहीं? तब आचार्यश्री जी ने कहा- क्योंकि बेटियाँ शादी के बाद दूसरे घर में चली जाती हैं, फिर वे सीख नहीं पायेंगी। बच्चे तो हमेशा पास रहते हैं, इसलिए कभी भी सीख लेंगे।

मुनिश्री कुंथुसागर-संकलित 'संस्मरण' से साभार

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

दि. जैन अतिशय क्षेत्र मोराझड़ी (अजमेर), राजस्थान

गोत्र सोनी, क्षत्रिय कुल, सोरी कुल, देवी आयश माता नगर, सोनपुर-राजा शिवसिंह जी ने संवत 101 में नगर खंडेला में मुनि जिनसेनाचार्य द्वारा श्रावकव्रत ग्रहण किया। तत्पश्चात् इनके वंशज सोनपुर छोड़कर संवत् 782 में चित्तोडगढ़ आ गये और संवत् 1132 में राय सा० रतनसिंह जी ने मंदिर बनवाकर चन्द्रप्रभु स्वामी की प्रतिष्ठा कराई।

संवत् 1334 में अल्लाउद्दीन खिलजी द्वारा चित्तौड़गढ़ पर कब्जा करने व जैनियों पर कठोर व्यवहार करने के कारण सोनी परिवार अलग-अलग स्थानों पर चला गया। लालचन्द्रजी टोंक गये, गोरधनजी सरवाड़ गये और रायमलजी मोराझड़ी आये। इन्होंने व इनके परिवार ने कुछ समय रामसर और अरांई में भी बिताया तथा वहाँ भी मंदिर बनाये। संवत् 1678 में सरवाड़ में मंदिर बनवाया।

यह परिवार प्रतिष्ठित एवं धर्मात्मा प्रवृत्ति का था। जीविकोपार्जन के साथ-साथ धर्म के प्रति भी इनकी अटूट श्रद्धा रही। अतः जहाँ-जहाँ भी यह परिवार जाकर बसा, वहीं पर जिनमंदिर निर्माण करने में किसी प्रकार की कसर नहीं रखी।

संवत् 170 में श्री देवकरणजी सोनी ने मंदिर बनवाकर बैशाख सुदी 3 को महाराज अनंतकीर्तिजी से प्रतिष्ठा कराई।

मोराझड़ी में केवल यही एक परिवार वैश्य जाति का रहा है, फिर भी इन्होंने अपना व्यवसाय प्रतिष्ठा के साथ किया और वहाँ के निवासियों से सम्मान व प्रतिष्ठा पाते रहे। मोराझड़ी की जनता आदर की दृष्टि से देखती रही यही कारण था कि वहाँ के नगर सेठ माने जाने लगे।

एक बार सेठ छोगालालजी सा. को बाईजी को लेने के लिये धनोप जाने का अवसर मिला। बताया जाता है कि वे धनोप की नदी में स्नान करने गये। वे नदी के किनारे शौचादि से निवृत्त हो रहे थे कि उन्हें नदी की मिट्टी में सफेद पत्थर दिखलाई दिया। उत्कंठा बढ़ी तो और मिट्टी हटाने की कोशिश की। मिट्टी हटाने पर दो पत्थर दिखलाई दिये। उन्होंने उन दोनों पत्थरों के खड्गासन प्रतिमा के रूप में दर्शन किये।

इससे उनकी विशेष श्रद्धा बढ़ती गई और अन्त में धनोप दरबार से प्रार्थना की कि ये प्रतिमायें हमें दे देवें। ठाकुर सा० ने इसके लिये सहमति दे दी।

इस प्रसंग में यह उल्लेख करना आवश्यक होगा कि इससे पहले तीन बड़ी प्रतिमायें श्यामवर्ण की दि० जैन पंचायत चौपानेरीवाले अपने यहाँ ले गये थे। इस ग्राम में ऐसा बताया जाता है कि इस नगरी में जैन प्रतिमायें जमीन खोदने पर उपलब्ध हो सकती हैं। राजस्थान में यह नगरी आज भी प्रसिद्ध है, हो सकता है कि किसी समय जैन भाई बसते हों। यहाँ आज भी देवी के मन्दिर के कारण यह ग्राम प्रसिद्ध एवं भीलवाड़ा जिला के अन्तर्गत है।

श्री छोगालालजी सोनी ने गद्गद् होकर मोराझड़ी व देराठूं के पंचों को बैलगाड़ी लेकर धनोप बुलवाया और दोनों जगह से पंच धनोप आ गये।

दोनों ओर के पंचों ने निश्चय किया कि श्री शांतिनाथ स्वामी की प्रतिमा मोराझड़ी व श्री पार्श्वनाथ स्वामी की प्रतिमा देराठूं ले जाई जावे। इस निर्णय के अनुसार दोनों ओर के पंचों ने अपनी-अपनी बैलगाड़ी में भगवान् की प्रतिमायें बैठाकर अपने-अपने गाँव ले जाने का प्रयास किया।

उस समय यह आश्चर्य दिखने में आया कि दोनों बैलगाड़ियाँ वहाँ से चली नहीं। बड़ा प्रयास, इसके लिये किया गया। निराश होकर बैठ गये। दोनों ओर से पंचों ने यह तय किया कि जिधर बैलगाड़ियाँ जाना चाहें जाने देवें।

कुछ देर बाद बैलगाड़ियाँ धनोप से प्रस्थान करने लगीं। उस समय देखने में आया कि देराठूँवाली बैलगाड़ी मोराझड़ी की ओर और मोराझड़ी की बैलगाड़ी देराठूँ की ओर चलने लगी। इस प्रकार दोनों गाडियाँ मोराझड़ी व देराठूँ पहुँच गईं।

मोराझड़ी में भगवान पार्श्वनाथ स्वामी की प्रतिमा आने पर समस्त गाँव को असीम हर्ष हुआ।

श्री छोगालालजी सोनी ने भगवान् पार्श्वनाथ स्वामी की प्रतिमा को चँवरी के पास विराजमान किया। प्रक्षाल-पूजन आरम्भ हो गया तथा चौखले में इस प्रतिमा जी के आगमन पर हर्ष छा गया, धीरे-धीरे इस स्थान का महत्त्व बढ़ने लगा। यह प्रतिमा विक्रमसंवत् 1941 में मोराझड़ी आई।

'मोराझड़ी पार्श्वनाथ अतिशय क्षेत्र परिचय'
नामक पुस्तिका से उद्धृत

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जिज्ञासा-सामाधान

पं. रतनलाल बैनाड़ा

जिज्ञासा - गूढ़ ब्रह्मचारी कौन होते हैं?

समाधान - धर्मसंग्रह श्रावकाचार 9/19-20 में इस प्रकार कहा है -

कुमारश्रमणाः सन्तः स्वीकृतागमविस्तराः।
बान्धवैर्धरणीनाथैर्दुःसहैर्वा परीषहैः॥ 19॥
आत्मनैवाऽथवा त्यक्तपरमेश्वररूपकाः।
गृहवासरता ये स्तुस्ते गूढब्रह्मचारिणः॥ 20॥

अर्थ - जिन्होंने कुमार काल में ही मुनि वेष धारण करके सिद्धान्त का अध्ययन किया है, वे फिर कभी अपने बन्धु लोगों के तथा राजादि के आग्रह से, दुःसह परीषहोपसर्गादि के न सहन होने से अथवा अपने आप ही उस धारण किये हुए जिनरूप (मुनिवेष) को छोड़कर गृह कार्य में लगते हैं उन्हें जिनागम में गूढ़ ब्रह्मचारी कहा है॥ 19-20॥

जिज्ञासा - तिर्यक् सामान्य और ऊर्ध्वतासामान्य की क्या परिभाषा है ?

समाधान - सामान्य परिणाम को तिर्यक्सामान्य कहते हैं और पूर्वोत्तर पर्यायों में रहनेवाले द्रव्य को ऊर्ध्वता सामान्य कहते हैं। जैसा कि परीक्षामुख 4/3-5 में कहा है -

सामान्यं द्वेधा तिर्यगूर्ध्वताभेदात्॥ 3॥
सदृशपरिणामस्तिर्यक् खण्डमुण्डादिषु गोत्ववत्॥ 4॥
परापरविवर्तव्यापि द्रव्यमूर्ध्वता मृदिव स्थासादिषु॥ 5॥

अर्थ - सामान्य दो प्रकार का है - एक तिर्यक् सामान्य दूसरा ऊर्ध्वता सामान्य। तहाँ सामान्य परिणाम को तिर्यक् सामान्य कहते हैं, जैसे गोत्व सामान्य, क्योंकि खण्डी-मुण्डी आदि गौवों में गोत्व सामान्य रूप से रहता है तथा पूर्वोत्तर पर्यायों में रहनेवाले द्रव्य को ऊर्ध्वता सामान्य कहते हैं, जैसे घड़े की पूर्वोत्तर पर्यायें हैं उन सबमें मिट्टी अनुगत रूप से रहती है॥ 5॥

जिज्ञासा - क्या रुद्र हुण्डावसर्पिणी काल में ही होते हैं, उत्सर्पिणी आदि अन्य कालों में नहीं होते ?

समाधान - इस संबंध में आचार्यों के दो मत पाये जाते हैं -

1. प्रथम मत तिलोयपण्णतिकार का है, जिनके अनुसार रुद्रों की उत्पत्ति होना हुण्डावसर्पिणी काल का दोष है। कहा भी है -

एक्क स्स होंति रुद्दा, कलहपिया णारदा य णवसंखा।
सत्तम तेवीसंतिम तित्थयराणं च उवसग्गो॥ 1642॥

अर्थ - हुण्डावसर्पिणी काल में ही ग्यारह रुद्र और कलहप्रिय नौ नारद होते हैं तथा सातवें, तेईसवें और अन्तिम तीर्थंकरों पर उपसर्ग भी होता है अर्थात् हुण्डावसर्पिणी के अलावा अन्य कालों में रुद्र नहीं पाये जाते हैं।

2. अन्य मत के अनुसार हुण्डावसर्पिणी के अलावा, अन्य उत्सर्पिणी आदि कालों में भी रुद्र की उत्पत्ति होती है।

अ - श्री हरिवंशपुराणकार आचार्य जिनसेन ने तो अगली उत्सर्पिणी में होने वाले ग्यारह रुद्रों के नाम तक भी दे दिये हैं। कहा भी है -

प्रमदः संमदो हर्षः प्रकामः कामदो भवः।
हरो मनोभवो मारः कामो रुद्रस्तथाङ्गजः॥ 571॥
भव्याः कतिपयैरेवतेपि सेत्स्यन्ति जन्मभिः।
रत्नत्रयपरित्राङ्गः सन्तः सन्तो नरोत्तमाः॥ 572॥

अर्थ - प्रमद, सम्मद, हर्ष, प्रकाम, कामद, भव, हर, मनोभव, मार, काम और अंगज ये ग्यारह रुद्र होंगे। ये सब भव्य होंगे तथा कुछ ही भवों में मोक्ष प्राप्त करेंगे। इनके शरीर भी रत्नत्रय से पवित्र होंगे तथा उत्तम महापुरुष होंगे।

आ - जम्बूदीपपण्णत्तिसंगहो ग्रन्थ के अनुसार सभी चतुर्थकालों में रुद्रों की उत्पत्ति होती है। जैसा कहा है-

रुद्दा य कामदेवा गणहरदेवा य चरमदेहधरा।
दुस्समसुसमे काले उप्पत्ती ताण बोद्धव्वा॥ 185॥

अर्थ - रुद्र, कामदेव, गणधरदेव और जो चरमशरीरी मनुष्य हैं, उनकी उत्पत्ति दुषमा-सुषमा काल में जाननी चाहिए।

इ - जैनतत्त्वविद्या में पूज्य मुनि श्री प्रमाणसागर जी ने पृ.54 पर ग्यारह रुद्रों का वर्णन करते हुए लिखा है- 'प्रत्येक काल चक्र में ग्यारह रुद्र उत्पन्न होते हैं। ये सभी अधर्मपूर्ण व्यापार में संलग्न होकर रौद्र कर्म किया करते हैं, इसलिए रुद्र कहलाते हैं। ---संयम और सम्यक्त्व से पतित हो जाने के कारण सभी रुद्र नरक गामी होते हैं।'

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

ई - पंडित बिहारीलाल जी ने 'बृहत् जैन शब्दार्णव' भाग-1 पृ.117 पर लिखा है- ''आगामी उत्सर्पिणी काल में तृतीय भाग दुखमा सुखमा नामक काल में होनेवाले ग्यारह रुद्रों में से अन्तिम रुद्र का नाम अंगज है।''

इस प्रकार इस प्रश्न के समाधान में दोंनो मत ज्ञातव्य हैं।

जिज्ञासा - '**णमो अणंतोहिजिणाणं**' शब्द का क्या अर्थ है ?

समाधान - इस शब्द का अर्थ होता है 'अनंतावधि जिनों को नमस्कार हो' अर्थात् जिनके ज्ञान की अवधि अर्थात् सीमा अनन्त है, ऐसे अर्हन्त परमेष्ठी को नमस्कार हो। जैसा कि श्री धवला पुस्तक-9 पृ.51-52 पर कहा है- अणंते त्ति उत्ते उक्कस्साणंतस्स गहणं ---उक्कस्साणंतो ओही जस्स सो अणंतोही। अधवावयविणासाणं वाचओ अंतसद्दो घेत्तव्वो। ओही मज्जायां, उक्कसाणंतादो पुधभूदा। अंतश्च अवधिश्च अन्तावधी, न विद्येते तौ यस्य स अनन्तावधिः। अभेदाज्जीवस्यापीयं संज्ञा। अनन्तावधि जिनाः।

अर्थ - अनंत ऐसा कहने पर उत्कृष्ट अनंत का ग्रहण करना चाहिए। ---उत्कृष्ट अनंत सीमा जिसकी हो वह अनंतावधि है। अथवा जघन्य के विनाश के लिये कहने योग्य अंत शब्द का ग्रहण करना योग्य है। अवधि शब्द मर्यादा वाचक है। जो अनन्त शब्द से पृथग्भूत है, जिसका अन्त भी है, सीमा भी है वह अंतावधि है और जिसका न अंत है और न सीमा है वह अनंतावधि है। अभेददृष्टि से जीव की भी यही संज्ञा है अर्थात् अनंतावधि जिन।

भावार्थ - जिसका अंत भी नहीं है और सीमा भी नहीं है ऐसे केवलज्ञान के धारी अर्हन्तों को नमस्कार हो।

जिज्ञासा - क्या सिद्ध भगवान् धर्मास्तिकाय के अभाव में लोकान्त के आगे गमन नहीं करते या उनकी उपादान शक्ति लोकान्त तक ही गमन करने की है? स्पष्ट कीजिए ?

समाधान - तत्त्वार्थसूत्र (सोनगढ़ प्रकाशन) में अध्याय 10, सूत्र 8 के अर्थ में इस प्रकार लिख है- ''जीव और पुद्गल की गति स्वभाव से इतनी है कि वह लोक के अन्त तक ही गमन करता है, यदि एसा न हो तो अकेले आकाश में लोकाकाश और अलोकाकाश ऐसे दो भेद ही न रहें, गमन करने वाले द्रव्य की उपादान शक्ति ही लोक के अग्रभाग तक गमन करने की है, अर्थात् वास्तव में जीव की अपनी योग्यता ही अलोक में जाने की नहीं है अतएव वह अलोक में नहीं जाता, धर्मास्तिकाय का अभाव तो इसमें निमित्त मात्र है।'' यह कथन आगम विरुद्ध है।

जीव का ऊर्ध्वगमन स्वभाव है। बृहद्द्रव्य संग्रह गाथा 2 में भी '**विस्ससोड्ढगई**' पद द्वारा जीव का ऊर्ध्वगमन स्वभाव बतलाया है। किन्तु आयुकर्म ने जीव के ऊर्ध्वगमन स्वभाव का प्रतिबंध कर रखा है। कहा भी है कि '**आयुष्यवेदनीयोदययोर्जीवोर्ध्वगमनसुखप्रतिबन्धकयोः सत्त्वात्।**'

अर्थ - जीव के ऊर्ध्वगमन स्वभाव का प्रतिबन्धक आयुकर्म का उदय और सुखगुण का प्रतिबंधक वेयनीय कर्म का उदय अरहंतों के पाया जाता है। सिद्ध भगवान के आयुकर्म का क्षय हो जाने से उनकी ऊर्ध्वगमनशक्ति असीम हो जाती है। अतः यह कहना कि सिद्धों में लोकाकाश के अंत तक ही जाने की उपादान शक्ति है, इसी कारण सिद्ध भगवान का गमन भी लोक के अंत तक ही होता है, उचित नही है। आचार्य अमृतचन्द्रस्वामी ने इस प्रकार कहा है कि-

ततोऽप्यूर्ध्वगतिस्तेषां, कस्मान् नास्तिचेन्मतिः।
धर्मास्तिकायस्याभावत्स हि हेतुर्गतेः परः॥ 144॥

अर्थ - लोक शिखर से ऊपर सिद्धों की गति क्यों नहीं होती ? गति का सहकारी कारण जो धर्मास्तिकाय, उसका अभाव होने से आगे सिद्धों की गति नहीं होती।

आचार्य कुन्दकुन्द ने भी श्री नियमसार गाथा 184 में इस प्रकार कहा है कि-

जीवाणं पुग्गलाणं गमणं जाणेहि जाव धम्मत्थो।
धम्मत्थिकायाभावे, तत्तो परदो ण गच्छंति॥

अर्थ - जीव और पुद्गलों का गमन, जहाँ तक धर्मास्तिकाय है, वहीं तक जानना चाहिए। धर्मास्तिकाय के अभाव में उससे आगे गमन नहीं होता है।

उपर्युक्त आगमप्रमाणों से यह भली प्रकार सिद्ध होता है कि सिद्ध भगवान् में अलोकाकाश में भी जाने की उपादान शक्ति है, किन्तु बाह्य सहकारी कारण धर्मद्रव्य का अभाव होने से अलोकाकाश में गमन नहीं है। यदि सोनगढ़ मतानुसार यह मान लिया जाये कि सिद्ध जीव की लोक के अंत तक ही गमन करने की शक्ति है, तो '**धर्मास्तिकायाभावात्**' यह सूत्र ही निरर्थक हो जायेगा और सूत्र अनर्थक होता नहीं है, क्योंकि वचनविसंवाद के कारणभूत राग द्वेष या मोह से रहित जिन भगवान् के वचन के अनर्थक होने का विरोध है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रश्नकर्ता - तेजा गदिया, रायपुर

जिज्ञासा - आजकल कुछ साधु तथा आर्यिकायें, अपने चातुर्मास कलश की पूजा एवं नित्य वंदना करने का उपदेश देती हैं। क्या यह उचित है ?

समाधान - साधु या आर्यिका के चातुर्मास स्थापना के अवसर पर, चातुर्मास कलश की स्थापना की परम्परा आगम में कहीं भी वर्णित नहीं है। आज से 10-15 वर्ष पूर्व तक, चातुर्मास कलशों की स्थापना नहीं होती थी। **परन्तु अब साधुओं आदि के चातुर्मास में, अत्यधिक धनराशि का व्यय होने के कारण, यह परम्परा, श्रावकों के द्वारा प्रारंभ कर दी गई है,** ताकि इसके माध्यम से चातुर्मास के खर्च की व्यवस्था हो जाये। पहले तो एक ही कलश की स्थापना होती थी पर अब तो 2, 3 या 5 कलशों की स्थापना की भी परम्परा दिखाई देने लगी है। वास्तव में, ये चातुर्मास कलश तो चातुर्मास की स्थापना के प्रतीक मात्र ही हैं। **इनमें कोई पूज्यपना नहीं है। अतः इनको नमस्कार करना, या इनके समक्ष अर्घ्य चढ़ाना बिलकुल उचित नहीं है। इसी प्रकार मंगलकलश भी न तो पूजनीय है और न वन्दनीय। इनके समक्ष भी अर्घ्य नहीं चढ़ाना चाहिए।**

1/205, प्रोफेसर्स कालोनी
आगरा (उ.प्र.)

गज़ल

नोरतमल कासलीवाल

आपके कद का हमको तो अन्दाज आया है
आप तो आसमाँ हो, जमी से सर झुकाते हम हैं।

1.

कुंदकुंद की चौखट से आप आये हो
समन्तभद्र के गलियारे की खुशबू भी लाये हो।
धर्म का गोया बहाव सा आया है। आपके कद का...

2.

आप ज्ञान ध्यान की धर्म की जन्नत नूरे
मोती और मूँगा माणक हो जिनवाणी के शूरे।
मुझमें सजदा के भाव उतर आये हैं। आपके कद का...

3.

आपको पूजने का हक तो सभी को है
इनायत की नजरिया तो बरसे सभी को है
रूप रोशनी में हम तो न्हवन करते चले।
काफी काफी है तसल्ली फरिश्तों के कदम की। आपके कद का...

4.

द्वादशांग के बादल तो घुमड़कर आये
झरना झर झर अमृत का बहता आये।
हस्ती तो आपकी-बड़ी निराली है। आपके कद का...

5.

चरणरज को उठाकर-सिर पर धर लो
यही तीरथ नुमाइश है गणधरों की सी है।
शकुन मिलता है हुलास आता है। आपके कद का...

मदनगंज किशनगढ़ (राज.)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मलेरिया बुखार

डॉ. रेखा जैन, एम. डी.

जून एवं जुलाई माह में जो बीमारी अक्सर आती है, वह है मलेरिया। इतनी भीषण गर्मी में जब बच्चे व परिवार के व्यक्ति अपने रिश्तेदारों के यहां जाते हैं वहां व्यवस्था न होने पर मच्छर व गंदगी का सामना करना पड़ता है वहां व्यवस्था न होने पर मच्छर व गंदगी का सामना करना पड़ता है उस दौरान हमें मलेरिया बुखार हो जाता है। थोड़ी सी लापरवाही भी कभी कभी परेशानी का सबब बन जाती है। जैसे मच्छरदानी न लगाना, घरों में साफ सफाई न रखना लेकिन अपना घर साफ कर पड़ोसी के घर सामने व सरकारी सड़क पर कचरा डालना। ये ही मुख्तया मलेरिया होने का कारण होता है।

मलेरिया कैसे होता है – सामान्यतया मलेरिया प्लोजमोडियम कीटाणु के द्वारा होता है जिसकी चार जातियाँ होती है। लेकिन भारत में मुख्तयाः दो जातियाँ ही पाई जाती हैं। बाईवेक्स ओर फैल्सीफेरम। यह कीटाणु अपनी लाइफ साईकिल (Part of the Cycle) का एक हिस्सा मादा ऐनाफिलीज मच्छर के अंदर करता है, और साईकिल का हिस्सा मनुष्य के अंदर पूर्ण करता है, उसी पीरियड में मनुष्य को मलेरिया का बुखार आता है। इस लाइफ साइकिल/चक्र को पूर्ण करने में प्लोजमोडियम कीटाणु को करीब 8 से 10 दिन लग जाते हैं। इसलिए मलेरिया मच्छर के काटने के दस दिन बाद होता है और मलेरिया यदि Infected (संक्रमित) मच्छर ने काटा हो, तो होता है। यदि सामान्य मच्छर ने काटा हो तो मलेरिया नहीं होता है। लेकिन इसकी पहचान कर पाना आम व्यक्ति के लिए संभव नहीं है कि जो वातावरण में मच्छर है वे इंफैक्टेड् Infected है या नहीं। प्लोजमोडियम कीटाणु मादा मच्छर के अंदर ही अपना जीवनचक्र पूर्ण करता है नर मच्छर के अंदर नहीं। इसलिए मलेरिया मादा मच्छर के काटने पर होता है। नर मच्छर तो केवल फूलों का रस लेता है। हमारी आम धारणा होती है कि मच्छर ने काटा और मलेरिया हुआ, जो सही नहीं है।

मलेरिया के लक्षण – मलेरिया में सामान्यतयाः ठंड देकर बुखार आता है। लेकिन यह आवश्यक नहीं है। कभी-कभी सिरदर्द, शरीर दर्द, पेट दर्द, या जी मचलाने के साथ भी होता है। फैल्सीफेरम मलेरिया में झटके (Convulsion) एवं खून की कमी के साथ विशेष रूप से देखने मिलता है।

पैथालाजी जाँच में ब्लड के पैरीफैरल् स्मीयर में प्लोजमोडियम कीटाणु की रिंग स्टेज या गेमीटो साइड {P.V.R., P.F.R./P.V.G./P.F.G} में माइक्रोस्कोप से दिख जाते हैं। सामान्य से ब्लड टेस्ट रिपोर्ट में एम. पी. पाजीटिव या निगेटिव पाया जाता है। यदि पाजीटिव पाया जाता है तो शरीर में मलेरिया है। लेकिन आज कल देखने में आता है कि एक बार की ब्लड टेस्ट में मलेरिया पाजीटिव ही आवें। इसके अलावा हीमोग्लोबिन भी कम हो जाता है एवं W.B.C Count बढ़ जाता है। मलेरिया में तिल्ली {Spleen} की साइज बढ़ जाती है। शरीर में खून की कमी हो जाती है {Pallor}। व्यक्ति बेहोश भी हो सकता है, क्योंकि शरीर में ग्लूकोस की भी कमी हो जाती है या पैरासाइट मस्तिष्क में पहुँच जाता है, और इसी कारण से झटके आने लगते हैं। इस बुखार की तीन अवस्थाएँ होती हैं। पहली शीतल अवस्था [Cold Stage] दूसरी अवस्था गरम अवस्था [Hot Stage] तीसरी अवस्था पसीने की अवस्था [Sweating Stage] कहलाती है। आमतौर पर ऐलोपैथी में सबसे पहले बुखार कम करने के लिए पैरासीटामांल और मलेरिया के लिए क्लोरोक्विन, कुनैन, रेजिज, मैफलोक्विन, फैल्सीगो, या अल्फा, बीटा, आरटी, ईथर उपयोग में लाई जाती है। इन दवाओं के उपयोग से ज्यादातर उल्टियों की इच्छा बढ़ जाती है, मुँह में कड़वापन आता है, चक्कर आते हैं, और पेट में जलन होती है। अतः ये दवाइयाँ कभी खालीपेट नहीं दी जाती हैं और हमेशा इन दवाईयों के साथ एक्टा सिड एवं एसीलांक जैसी दवाईयाँ भी दी जाती हैं। ग्लुकोस भी दिया जाता है।

लेकिन ऐलोपैथी चिकित्सा में खाने पीने का परहेज नहीं होता है, जिससे रिकवरी जल्दी नहीं होती है और पूर्ण रूप से आराम नहीं होता है। रोग जड़ से नहीं जाता जो कि समय पाकर फिर प्रगट हो जाता है। यदि हम इसके साथ आहार एवं प्राकृतिक चिकित्सा का सहारा लेते है तो बहुत जल्दी एवं स्थाई आराम मिल जाता है।

प्राकृतिक उपचार – मलेरिया में जब बुखार आया हो, तब मरीज के माथे पर पानी की पट्टी रखकर बुखार उतर जाने का इंतजार करना चाहिए। जैसे ही बुखार उतरता है, सबसे पहले गरम पानी में नीबू के रस का एनिमा देना चाहिए। इसके बाद कमर पानी पट्टी का भी इस्तेमाल करना चाहिए। परन्तु मलेरिया के रोगी को पेडू पर कभी मिट्टी वाली पुल्टिस नहीं रखनी चाहिए। क्योंकि मलेरिया

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

बुखार का स्वभाव यही है कि वह सर्दी से बढ़ता है और मिट्टी ठंडी होती है। पेट साफ हो जाने के बाद दूसरे समय में बुखार आने के पहले एक बार भीगी चादर पैक [Wet Sheet pack] का इस्तेमाल करना चाहिए। इस चादर लपेट में रोगी के शरीर को दोनों ओर से अच्छे से कम्बल पैक करना चाहिए और पैर के तलवे के नीचे गरम पानी की बोतल को रखना चाहिए। इससे पसीने के साथ रोगी के शरीर से बहुत सा विष बाहर निकल जाता है। यह जब भींगी चादर पैक [Wet Sheet pack] उपचार दिया जाए तो कमरे को बंद रखा जाए हवा आदि न आने पावें।

इसी प्रकार दूसरे दिन स्टीम बाथ देकर उसके बाद ठंडी मालिश दी जा सकती है। घर्षण स्नान बुखार के लिए रामबाण है। लेकिन यह हमेशा याद रखना चाहिए कि बुखार आरंभ होने के पहले कम से कम दो घंटे पहले यह घर्षण स्नान समाप्त हो जाना चाहिए। यदि घर्षण स्नान संभव न हो तो, तब उसे तौलिया स्नान कराना ही ठीक है। इसके बाद गले तक कम्बल से ढक कर रोगी को सुला देना चाहिए। दूसरे दिन फिर बुखार चढ़ने से पूर्व पहले दिन के समान ही चिकित्सा देनी चाहिए। इसी के साथ बुखार, कंपकपी आने से पहले पैर स्नान देकर रोगी को पसीना आना देना चाहिए। जब पैर स्नान (Hot foot Bath) दिया जाए तो रोगी को गर्म पानी में नीबूं का रस दिया जाना चाहिए। ऐसा करने से शरीर से जल्दी पसीना छूटने लगता है। साधारण तौर पर 20 मिनट तक ही गर्म पाढ़ स्नान दिया जाना चाहिए। रोगी को उपचार के बाद ऐसे कपड़े पहनाना चाहिए जिससे पसीना निकलने में रुकावट न हो। उपचार के बाद हमेशा रोगी को कम्बल से अच्छे से ढक देना चाहिए और गरम पानी की बोतल पैरों के नीचे रखना चाहिए। पीने के लिए गर्म पानी देना चाहिए। यदि ठंडा पानी दिया जावे, या रोगी को पूरी तरह से न ढँका जावे तो उसे जाड़ा या कँपकपी लौट सकती है।

अगर खाना खाने के बाद ही रोगी को बुखार आ जाता है तब वह बुखार साधारण तौर से अधिक समय टिकने वाला बुखार होता है। इसलिए इस हालत में गुनगुना पानी पीकर उल्टी कर देना हितकर होता है। लेकिन जिसे कुंजल का अभ्यास हो और आत्मविश्वास हो वहीं इस क्रिया को आसानी से कर सकता है। बुखार जब न रहे तब सुबह के समय रोगी के पेडू पर और शाम को लीवन पर गरम ठंडा पटटी का उपचार देना चाहिए। साथ ही एक बार नीबू रस का एनिमा देना चाहिए। इसके अलावा रात दिन रोगी को भीगी कमर पट्टी का इस्तेमाल करना चाहिए। भीगी कमर पट्टी को दिन में हर बार दो दो घंटे के अंतराल से बदलना चाहिए और रात में उसे रात भर के लिए लगा देना चाहिए। मलेरिया बुखार जब तक अच्छी तरह से छूट न जाए, तब तक रोगी को पूर्ण स्नान कभी नहीं कराना चाहिए। इस समय दिन में तीन बार उसके सिर पर ठण्डे पानी से धोकर उसका बाकी शरीर भीगे गमछे से पौंछ देना ही उचित है। इससे बुखार के लौटने की आशंका नहीं रहती है। इन्हीं उपचारों के दौरान यदि संभव हो, तो रोगी को एक धूप स्नान देकर ठंडी मालिश भी कर देनी चाहिए। इससे शरीर में ऊर्जा बढ़ती है। मलेरिया के रोगी को यदि दिन में 3 बार उपचार दिया जावे, तो दो दिन में मलेरिया दूर हो जाता है और रोगी स्वस्थ हो जाता है। लेकिन प्राकृतिक चिकित्सा में खोई हुई शक्ति को प्राप्त करने के लिए 6-7 दिन तक लगातार हल्का फुल्का उपचार चिकित्सक के निर्देशन में लेते रहना चाहिए। यह सभी उपचार उस व्यक्ति को घर पर करना चाहिए जिसे प्राकृतिक चिकित्सा की जानकारी हो और उसने पहले कहीं प्राकृतिक चिकित्सा का उपचार लिया हो। नहीं तो 'नीम हकीम खतरे जान' वाली कहावत चरितार्थ होती है।

प्राकृतिक एवं हर्बल औषधि

1 - 7 / 8 तुलसी के पत्ते का रस या काढ़ा दिन में तीन बार काली मिर्च का चूर्ण मिलाकर एक एक चम्मच पिलाने से मलेरिया बुखार दूर भाग जाता है।

2 - या मलेरिया बुखार में नीबू को काटकर नमक, काली मिर्च और जीरा डालकर गरम करके रोगी को चुसाएँ।

3 - या फूली हुई फिटकरी के चूर्ण में चार गुना पीसी हुई गुड़ या चीनी अच्छी तरह मिला लें। दो ग्राम की मात्रा गुनगुने पानी से दो-दो घंटे बाद तीन बार लें। तीन खुराकों के लेने से ही मलेरिया नहीं रहेगा। **लेकिन गर्भवती स्त्री को यह औषधी कदापि नहीं दे।**

4 - या कुटकी के बारीक चूर्ण आधा ग्राम बताशे में भरकर ताजा पानी से बुखार चढ़ने से पहले रोगी को खिला दे। मलेरिया, सर्दी लगकर चढ़ने वाला बुखार उतर जायेगा। बुखार की अवस्था में गर्म पानी से दिन में दो तीन बार खिलाने से बुखार पसीना आकर उतर जाता है।

5 - या सादा खाने का नमक पिसा हुआ लेकर तवे पर धीमी आँच पर इतना सेकें कि उसका रंग काला भूरा याने कि काफी जैसा हो जाए। ठण्डा होने पर शीशी में भर

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

लें। ज्वर आने से पहले 6 ग्राम भुना नमक एक गिलास गर्म पानी में मिलाकर देवें। ज्वर उतर जावेगा। अचूक दवा है।

क्या खायें - बीमारी के दौरान भाग्योदय तीर्थ में निर्मित रक्तशुद्धि काढ़ा रात्रि में एक चम्मच पानी में फुलाकर सुबह खाली पेट उसे उबाल कर आधा बचने पर छान कर प्रतिदिन करीब 15 दिन तक लेवें, जिससे शरीर में किसी भी प्रकार का ज्वर एवं इंफेक्शन नहीं होगा। (गर्मी के दिनों में काढ़ा नहीं उबालना चाहिए। बगैर उबालें ही पीना चाहिए।)

जब ज्वर उतरे तब आरारोट, साबूदाने की खीर, चावल का माड़, अंगूर, सिंघाड़ा जैसी हल्की एवं सुपाच्य चीजें खायें।

जिस दिन ज्वर आने वालो हो उस दिन पुराने चावल का भात, सूजी की रोटी, थोड़ा दूध लेवें। एवं कच्चा केला, परवल, बैगन, केले के फूल की सब्जी खाएँ। गर्म पानी में नीबू निचोड़ कर स्वादानुसार चीनी मिलाकर 2/3 बार पिएँ। ज्वर आने से पहले सेब खाएँ। प्यास लगने पर थोड़ा थोड़ा पिएँ। ज्वर में गरम पानी और बाद में गर्म किया ठंडा पानी ही पिएँ। मीठा आहार जैसे गन्ने का रस, फलों का जूस एवं फल भी लिये जाते हैं। इससे ग्लूकोस एवं खून की कमी की पूर्ति सीधे रूप में होगी। खून की कमी पूर्ण करने के लिए जवारे का रस, हल्का भोजन ही लेना चाहिए। और धीरे धीरे नियमित डाइट पर आना चाहिए।

क्या न खाएं - भारी-गरिष्ठ, तले, मिर्च मसालेदार, भोजन न करें। फ्रिज का ठंडा पानी, आइसक्रीम, ठंडी तासीर की चीजें सेवन न करें।

क्या करें - मच्छर दानी लगाकर सोएँ। रोगी का कमरा स्वच्छ, हवादार रखें। ज्वर उतरने के बाद गर्म जल से शरीर पोंछ दें।

क्या न करें - मच्छरों के भगाने के लिए आल आउट एवं कछुआ छाप आदि अगरबत्ती नहीं लगानी चाहिए। क्योंकि इससे साइड इफेक्ट होते हैं। इसके बदले नीम का धुआँ या कंडा कर लेना चाहिए। यदि आपके पास मच्छरदानी जैसे साधन उपलब्ध नहीं हैं या फिर कहीं आप बाहर गए है और मच्छर है तो उस स्थान पर **अमृतधारा** अर्थात् कपूर, पिपरमेंट, अजवाइन के फूल बराबर मात्रा में बोतल में मिलाकर (लिक्वड) शरीर में लगायें।

मच्छर गन्दे पानी में बढ़ते है। अतः घर के आसपास पानी इकट्ठा न होने दें। रात्रि में जागरण न करें। शरीर को ठंड लगने न दें। उचित कपड़े पहनें। अधिक परिश्रम का कार्य न करें। यहाँ वहाँ का एवं बिसलरी का पानी न पीवें।

विशेष - मलेरिया रोग को मात्र प्राकृतिक उपचार एवं आहार व परहेज से ठीक किया जा सकता है। लेकिन जिन्हें प्राकृतिक चिकित्सा की जानकारी नहीं है या जो ऐलोपैथी के सहारे ही जीना चाहते हैं, वे अपनी ऐलोपैथी दवा के साथ यदि उपर्युक्त उपचार एवं आहार लेते हैं, तो रिकवरी बहुत जल्दी होती है एवं दोबारा मलेरिया नहीं आता।

भाग्योदय तीर्थ प्राकृतिक चिकित्सालय
खुरई रोड, सागर, म. प्र.

मिठास

शाम का समय था। उस दिन आचार्य श्री जी का उपवास था। हम और कुछ महाराज लोग वैयावृत्ति की भावना से आचार्य श्री जी के पास जाकर बैठ गये, तब आचार्य श्री जी ने हँसकर कहा- आप लोग तो मुझे ऐसा घेर कर बैठ गये जैसे किसी पदार्थ गुड़ आदि के पास चारों ओर से चीटियाँ लग जाती हैं। तभी शिष्य ने कहा- हाँ आचार्य श्री जी! गलती चींटियों की नहीं है, बल्कि गुड़ की है। वह इतना मीठा क्यों होता है।

आचार्य श्री जी ने कहा- गुड़ तो गुड़ होता है, उसका इसमें क्या दोष। शिष्य ने कहा- क्या करें आचार्य श्री गुड़ में मिठास ही इस प्रकार की होती है। चीटिंयों को उसकी गंध बहुत दूर से ही आ जाती है और वे उसके पास दौड़ी चली आती हैं। आचार्य श्री ने कहा- यह तो उसका स्वभाव है। शिष्य ने कहा- ऐसा ही आपका स्वभाव है। इसलिये सभी आपके पास दौड़े चले आते हैं।

मुनिश्री कुंथुसागर-संकलित 'संस्मरण' से साभार

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

समाचार

प्रतिभासम्पन्न विद्यार्थियों को आह्वान

भारतीय प्रशासनिक सेवा की परीक्षा में सम्मिलित होने के इच्छुक विशिष्ट योग्यता सम्पन्न किसी भी जैन विद्यार्थी की सम्पूर्ण व्यवस्था का दायित्व वहन करने को हम लालायित हैं। राज्यस्तरीय व अन्य प्रशासनिक योग्यता विकास के लिये भी उत्कृष्टता के आधार पर विचार किया जा सकता है।

जैन समाज में अगणित प्रतिभाएँ छिपी हुई हैं। संस्कारवान् प्रतिभा से संघ-समाज के साथ देश का भविष्य भी समुज्ज्वल हो सके, इसी भावना से सेवा करने का मानस हो रहा है। सभी सूचनाएँ गोपनीय रखी जाने के आश्वासन के साथ प्रतिभासम्पन्न युवकों व युवतियों को आगे आने का आह्वान।

Managing Trustee
Surana & Surana Public Charitable Trust
(ESTD. 1981)
International Law Center, (Opposite High Court)
224, N.S.C. Bose Road, Chennai - 600 001
Ph. : 044-25390121, 25381616
Fax : 044-25383339, Mob. 09884491000

डॉ. प्रेमचन्द्र रांवका राजस्थान शासन द्वारा सम्मानित

राजस्थान राज्य सरकार ने राज्य स्तर पर आयोजित होने वाले संस्कृत दिवस समारोह 2006 में संस्कृत शिक्षा-साहित्य के क्षेत्र में उत्कृष्ट योगदान करने वाले पांच विद्वानों को स्थानीय जयपुर के सूचना केन्द्र सभागार में श्रावणी पूर्णिमा दि. 9 अगस्त 06 को सम्मानित किया। उनमें संस्कृत - हिन्दी जैन साहित्य के विद्वान् डॉ. प्रेमचन्द जी रांवका को संस्कृत विद्वान् के रूप में राज्य को शिक्षा मंत्री श्री घनश्याम तिवारी ने 21 हजार रु. की नकद राशि, प्रशस्ति पत्र, शाल एवं श्री फल प्रदान कर सम्मानित किया।

प्रदीप रांवका,
22, श्री जी नगर दुर्गापुरा, जयपुर

ईसरी में आत्मसाधना शिक्षण शिविर का आयोजन

प्राकृतिक छटा से विभूषित, वर्णीद्वय की समाधिस्थली सम्मेदाचल की तलहटी में अवस्थित उदासीन आश्रम ईसरी आत्म-साधना के लिये विश्व में सर्वश्रेष्ठ स्थान है। अपना हित चाहने वाले समस्त बंधुओं से अनुरोध है, कि आगामी 1/12/2006 से 15/12/2006 तक मनोयोगपूर्वक अपना समय आदरणीय पं. श्री मूलचंद जी लुहाडिया, बालब्रह्मचारी पवन जी व कमल जी के सान्निध्य में ईसरी आश्रम में बिताने का संकल्प करें।

आवास, भोजन, बिजली, गर्म पानी आदि की समुचित व्यवस्था रहेगी।

विशेष जानकारी के लिये संपर्क करें -

1. श्री रतनलाल जैन 09339791048
2. श्री ज्ञानचंद छावडा 09434038281
3. रतनलाल नृपत्या 09414265612
4. श्री माणिकचंद जी गंगवाल 06512315420 / 2203796
5. श्री शांतिलाल जी सेठी 09334102838
6. श्रीमती हीरामणी छावडा 09830647854

पधारने की पूर्व सूचना मिलने पर व्यवस्था सुचारु रूप से हो सकेगी।

सम्पतलाल छावडा
आत्म प्रकाश सदन, 188/1/जी,
माणिक तल्ला, मेन रोड, कोलकाता-700054

प्रशिक्षार्थियों का यू.पी.एस.सी. की प्रारंभिक परीक्षा में चयन

आचार्य 108 श्री विद्यासागर जी महाराज के आशीर्वाद एवं प्रेरणा से संचालित अखिल भारतवर्षीय दिगम्बर जैन प्रशासकीय प्रशिक्षण संस्थान पिसनहारी मढ़िया गढ़ा जबलपुर से इस वर्ष आई.ए.एस. (U.P.S.G.) की प्रारंभिक परीक्षा में पाँच प्रशिक्षार्थी सर्वश्री संजय जैन (पारौल), मनीष जैन (बण्डा), राजीव जैन (सागर), प्रणव बजाज (दमोह) एवं प्रमोद जैन (शाहगढ़) का चयन हुआ है।

इस वर्ष मई 2006 में आयोजित म.प्र. पी. एस. सी. की परीक्षा में उत्तीर्ण 71 प्रशिक्षार्थी गणों ने मुख्य परीक्षा दी है। एवं सितम्बर 2006 में आयोजित होने वाली छत्तीसगढ़ पी. एस. सी. की मुख्य परीक्षा में संस्थान के 14 प्रशिक्षार्थी बैठ रहे हैं।

संस्थान के निदेशक अजित जैन एडवोकेट ने बताया कि नवीन सत्र सितम्बर 2006 में संस्थान का विस्तार करते हुए सिविल जज, पी.एम.टी., पी.ई.टी., पी.पी.टी., बैंक, रेल्वे आदि सभी प्रतियोगी परीक्षाओं की उच्च स्तरीय तैयारी कराई जायेगी। संस्थान में प्रवेश हेतु फार्म 15 सितम्बर 06 तक जमा होंगे।

अजित जैन
निदेशक

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

भगवान् विमलनाथ

जम्बूद्वीपसंबंधी भरतक्षेत्र के काम्पिल्य नगर में भगवान् ऋषभदेव के वंशज कृतवर्मा राज राज्य करते थे। जयश्यामा उनकी महारानी थीं। माघ शुक्ल चतुर्थी के दिन रानी जयश्यामा ने सहस्रार स्वर्ग के इन्द्र को तीर्थंकरसुत के रूप में जन्म दिया। भगवान् वासुपूज्य के तीर्थ के बाद जब तीस सागर वर्ष बीत गये और पल्य के अन्तिम भाग में धर्म का विच्छेद हो गया, तब विमलनाथ भगवान् का जन्म हुआ था। उनकी आयु इसी अन्तराल में शामिल थी। उनकी आयु साठ लाख वर्ष की थी, शरीर साठ धनुष ऊँचा था और कान्ति सुवर्ण के समान थी। कुमार काल के पन्द्रह लाख वर्ष बीत जाने पर भगवान् विमलवाहन राज्याभिषेक को प्राप्त हुए। इस प्रकार छह ऋतुओं में उत्पन्न हुए भोगों का उपभोग करते हुए भगवान् के तीस लाख वर्ष बीत गये। एक दिन उन्होंने हेमन्त ऋतु में बर्फ की शोभा को तत्क्षण में विलीन होते देखा। जिससे उन्हें उसी समय संसार से वैराग्य हो गया। तदनन्तर सहेतुक वन में जाकर बेला का नियम लेकर माघशुक्ल चतुर्थी के दिन सायंकाल के समय एक हजार राजाओं के साथ दीक्षा धारण कर ली। पारणा के दिन उन्होंने नन्दनपुर नगर में प्रवेश किया। वहाँ सुवर्ण के समान कान्ति वाले राजा जयकुमार ने उन्हें आहारदान देकर पञ्चाश्चर्य प्राप्त किये। इस तरह तपश्चरण करते हुए जब तीन वर्ष बीत गये, तब वे महामुनि एक दिन अपने ही दीक्षावन में बेला का नियम लेकर जामुन वृक्ष के नीचे ध्यानारूढ़ हुए। फलस्वरूप माघशुक्ल षष्ठी के दिन सायंकाल के समय उन महामुनि विमलनाथ ने घातिया कर्मों का विनाश कर केवलज्ञान प्राप्त किया। भगवान् के समवशरण की रचना हुई, जिसमें अड़सठ हजार मुनि, एक लाख तीन हजार आर्यिकायें, दो लाख श्रावक, चार लाख श्राविकायें, असंख्यात देव-देवियाँ और संख्यात तिर्यंच थे। इस तरह धर्म क्षेत्रों में विहार कर धर्मोपदेश देते हुए भगवान् सम्मेदशिखर पर जा विराजमान हुए। एक माह का योग निरोध कर उन्होंने प्रतिमायोग धारण किया। तदनन्तर आषाढ़ कृष्ण अष्टमी के दिन प्रातःकाल के समय आठ हजार छह सौ मुनियों के साथ अघातिया कर्म नाश कर उन्होंने मोक्ष प्राप्त किया।

भगवान् अनन्तनाथ

जम्बूद्वीपसंबंधी भरतक्षेत्र की अयोध्या नगरी में इक्ष्वाकुवंशी काश्यपगोत्री महाराज सिंहसेन राज्य करते थे। उनकी महारानी का नाम जयश्यामा था। उस महारानी ने ज्येष्ठ कृष्ण द्वादशी के दिन अच्युत स्वर्ग के पुष्पोत्तर विमानवासी इन्द्र को तीर्थंकरसुत के रूप में जन्म दिया। श्री विमलनाथ भगवान् के बाद नौ सागर और पौन पल्य का काल बीत जाने पर तथा अन्तिम समय धर्म का विच्छेद हो जाने पर भगवान् अनन्तनाथ का जन्म हुआ। उनकी आयु भी इसी अन्तराल में शामिल थी। उनकी आयु तीन लाख वर्ष की थी। शरीर पचास धनुष ऊँचा था तथा सुवर्ण के समान उनके शरीर की कान्ति थी। भगवान् अनन्तनाथ ने सात लाख पचास हजार वर्ष बीत जाने पर राजपद प्राप्त किया। राज्य करते हुए जब पन्द्रह लाख वर्ष बीत गये तब किसी एक दिन उल्कापात देखकर उन्हें यथार्थ ज्ञान हो गया। विरक्त चित्त भगवान् अपने अनन्तविजय नामक पुत्र के लिए राज्य प्रदान कर सहेतुक वन में गये। वहाँ बेला का नियम लेकर ज्येष्ठ कृष्ण द्वादशी के दिन सायंकाल के समय एक हजार राजाओं के साथ दीक्षित हो गये। वे अनन्तनाथ मुनिराज पारणा के दिन साकेतपुर नगर में गये। वहाँ सुवर्ण के समय कान्तिवाले विशाख नामक राजा ने उन्हें आहारदान देकर पञ्चाश्चर्य प्राप्त किये। इस प्रकार तपश्चरण करते हुए जब छद्मस्थ अवस्था के दो वर्ष बीत गये, तब उसी सहेतुक वन में अश्वत्थ (पीपल) वृक्ष के नीचे चैत्र कृष्ण अमावस्या के दिन सायंकाल के समय उन्होंने घातिया कर्म का क्षयकर केवलज्ञान प्राप्त किया। भगवान् के समवशरण की रचना हुई, जिसमें छयासठ हजार मुनि, एक लाख आठ हजार आर्यिकायें, दो लाख श्रावक, चार लाख श्राविकायें, असंख्यात देव-देवियाँ और संख्यात तिर्यंच थे। अनेक देशों में विहार कर धर्मोपदेश देते हुए भगवान् अनन्त जिन सम्मेदशिखर पर जा विराजमान हुए। वहाँ एक माह का योगनिरोध कर छह हजार एक सौ मुनियों के साथ प्रतिमायोग धारण किया तथा चैत्र कृष्ण अमावस्या के दिन रात्रि के प्रथम भाग में अघातिया कर्मों का क्षय कर मुक्ति पद प्राप्त किया।

मुनिश्री समतासागरकृत 'शलाकापुरुष' से साभार

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

रजि नं. UPHIN/2006/16750

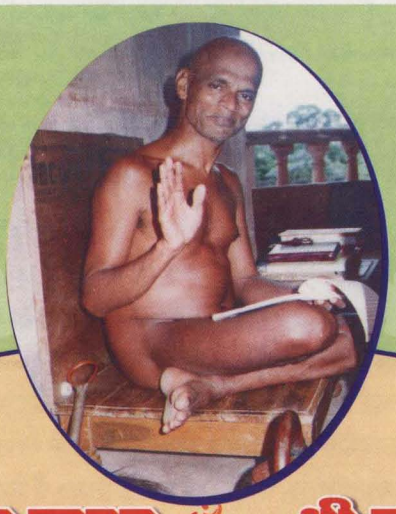

मुनि श्री योगसागर जी

श्री चन्द्रप्रभ स्तवन

(वसन्ततिलका छन्द)

1

श्री चन्द्रनाथ अरहन्त त्रिलोकपूज्य।
है अंतरंग बहिरंग प्रकाश पुंज॥
काया अहो स्फटिक निर्मल पारदर्शी।
मैं आपसा बन सकूँ निज आत्मदर्शी॥

2

आदर्शवान् तव जीवन को नमोऽस्तु।
मिथ्यात्व नाशक दिवाकर को नमोऽस्तु॥
सम्यक्त्वरत्न निधिदायक को नमोऽस्तु।
संसार के तरण तारक को नमोऽस्तु॥

3

अम्भोज नील सम नेत्र सुशोभते हैं।
निर्ग्रन्थ मात्र तप से सुरभीत से हैं॥
जो राग-द्वेषमय संसृति से परे है।
ये शुद्ध बुद्ध शिवसिद्ध विदेह से हैं॥

4

निष्काम भक्ति परमोत्तम कार्यकारी।
देवादि के अतिशयादि प्रभावकारी॥
है निर्जरा भव भवान्तर पाप की है।
यो ज्ञान तो प्रथम बार हमें मिला है॥

5

कोई विकल्प मन में अभिलाष ना है।
यों भावना हृदय में उठती सदा है॥
यों भक्ति में सतत लीन बना रहूँ मैं।
जो आप का जप करूँ तव सा बनूँ मैं॥

श्री सुपार्श्वनाथ स्तवन

(इन्द्रवज्रा छन्द)

1

आदर्श पीयूष सुपार्श्वनाथ।
पादारविन्दो मम है सुमाथ॥
तेरा चमत्कार अपूर्वता है।
जो चिच्चमत्कार प्रकाशता है॥

2

है काल काला यह व्याल सा है।
प्रत्येक को ग्रास बना रहा है॥
ये विश्वप्राणी भय से ग्रसे हैं।
हे नाथ रक्षा तव हाथ में है॥

3

ये काल भी तो तुमसे डरा है।
जो आपके ही चरणों झुका है॥
हारा गया संयम शस्त्र से है।
ये आप तो कालजयी बने हैं॥

4

सर्वज्ञ सूर्योदय की प्रभाली।
आरोग्यदायी शिवसौख्य देती॥
जो धर्म अम्भोज विकासती है।
कारुण्यदायी सुरभी लिये है॥

5

आशा निराशा परिमुक्त हूँ मैं।
अध्यात्म पीयूष सदा चखूँ मैं॥
अज्ञान-मोही बन के भ्रमा मैं।
तेरी प्रभासे निज को लखा मैं॥

प्रस्तुति - रतनचन्द्र जैन

स्वामी, प्रकाशक एवं मुद्रक : रतनलाल बैनाड़ा द्वारा एकलव्य ऑफसेट सहकारी मुद्रणालय संस्था मर्यादित, 210, जोन-1, एम.पी. नगर, भोपाल (म.प्र.) से मुद्रित एवं 1/205 प्रोफेसर कॉलोनी, आगरा-282002 (उ.प्र.) से प्रकाशित। संपादक : रतनचन्द्र जैन।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org